फरवरी-2024 | वर्ष : 07 | अंक : 11 | मूल्य : ₹25/- मात्र

युगांतर प्रकृति

भारत के पूर्वी राज्यों का एकमात्र पर्यावरण मासिक

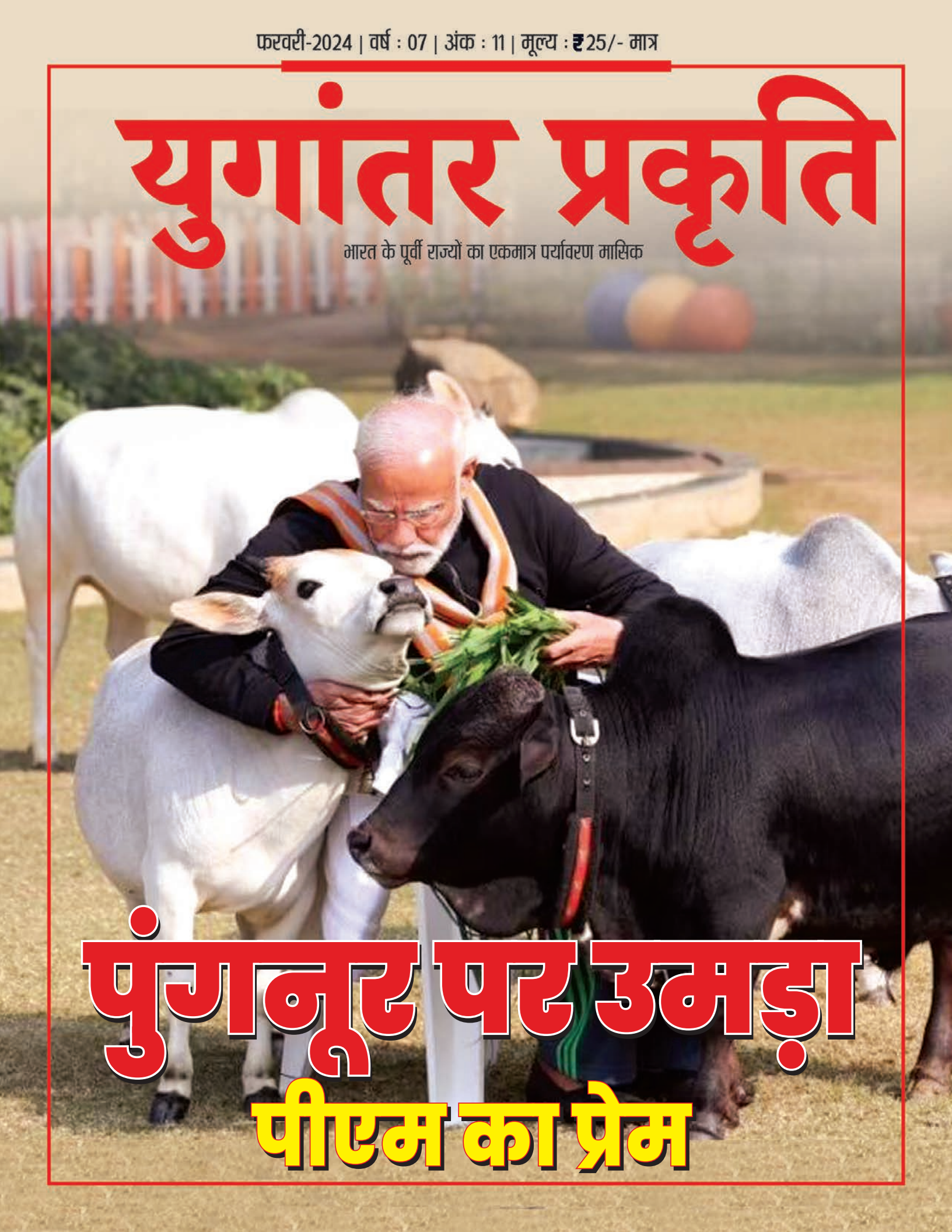

पुंगनूर पर उमड़ा पीएम का प्रेम

जोहार,

झारखण्ड अलग राज्य होने के 20 वर्षों बाद, विषम परिस्थितियों में भी हेमन्त बाबू के कुशल नेतृत्व में जो कामकाज और योजनाएं यहां के आदिवासियों-मूलवासियों की बुनियादी जरूरतों को पूरा करने हेतु चलायी गयी हैं, यह गठबंधन सरकार, उस काम को और तेजी से आगे बढ़ाने का काम करेगी।

यहां के सभी वर्गों, जैसे युवा, बच्चे, बुजुर्गों, महिलाएं, किसानों और मजदूरों को हक-अधिकार देने तथा शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि जैसे क्षेत्रों को ध्यान में रखते हुए जनहित में हम काम करेंगे।

झारखण्ड में जल-जंगल-जमीन को लेकर वर्षों से संघर्ष हुआ है। यहां के आदिवासियों-मूलवासियों के अस्तित्व और अस्मिता को संरक्षित करने का काम हमें करना है।

हमारा प्रयास रहेगा कि भगवान बिरसा मुंडा, सिदो- कान्हू और बाबा तिलका मांझी समेत सभी वीर शहीदों के आदर्शों को धरातल पर उतार कर, राज्यवासियों के जीवन स्तर में सकारात्मक बदलाव ला सके।

यह बहुत बड़ा दायित्व मुझे मिला है जिसे मैं पूरी लगन से निभाऊंगा।

जय हिन्द !
जय झारखण्ड !

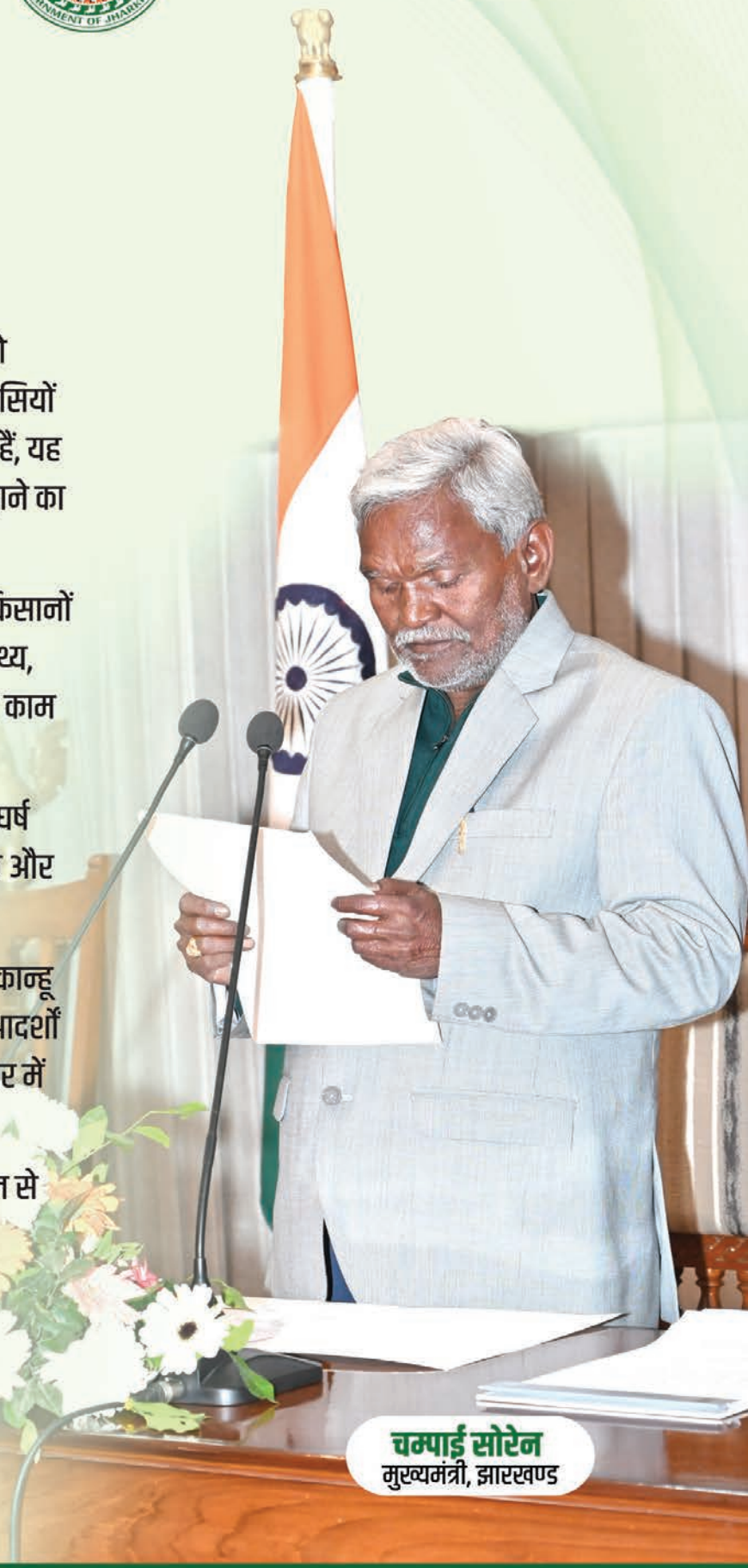

चम्पाई सोरेन
मुख्यमंत्री, झारखण्ड

इस अंक में खास...

कवर स्टोरी

4

पुंगनूर पर उमड़ा
पीएम का प्रेम

18

पर्यावरण

पक्षियों का प्रजनन काल

पक्षियों का प्रजनन काल उनके प्रजनन या अंडे देने की क्षमता के साथ जुड़ा होता है। पक्षियां विभिन्न प्रजातियों में अलग-अलग होती हैं, और उनका प्रजनन काल भी इस पर निर्भर करता है।

08

अवसर विशेषः

आर्द्रभूमि और मानव कल्याण

सबसे पहले यह जानना समीचीन होगा कि आर्द्रभूमि की परिभाषा क्या है। इसे आसान शब्दों में ऐसे समझें कि आर्द्रभूमि वे क्षेत्र हैं जहां पानी मिट्टी को ढक लेता है, या पूरे वर्ष मिट्टी की सतह पर या उसके निकट मौजूद रहता है।

20

किलर व्हेल

किलर व्हेल: बेहद ख़तरनाक मछली

15

सरगैसम शैवाल

सरगैसम शैवाल: बड़ी चुनौती

केंद्रीय जल आयोग के डाटा के अनुसार उत्तर भारत के जलाशयों में पानी के भंडारण को लेकर दिए गए आंकड़ों के अनुसार 18 जनवरी तक हिमाचल, पंजाब और राजस्थान के जलाशयों में पानी की मात्रा उनकी क्षमता के आधे तक पहुंच गई है।

28

जरा हटके

चूल्हों के नाम पर खेल

युगांतर प्रकृति

भारत के पूर्वी राज्यों का एकमात्र पर्यावरण मासिक

वर्ष-7, अंक-11, फरवरी-2024 कुल पृष्ठ-36 (आवरण सहित)

मुख्य संरक्षक
सरयू राय

प्रधान संपादक
आनंद सिंह

संपादक
अंशुल शरण

संरक्षक मंडल
राजेन्द्र सिंह, एम.सी. मेहता, प्रो. आर. के. सिन्हा, प्रो. एस. इ. हसनैन, डॉ. आर. एन. शरण, डॉ. आर. के. सिंह

सलाहकार मंडल
डॉ. एम. के. जमुआर, डॉ. दिनेश कुमार मिश्र, डॉ. के. के. शर्मा, डॉ. गोपाल शर्मा, डॉ. ज्योति प्रकाश

डिजाइन आर्टिस्ट
अनवारूल हक

विधि परामर्शी
रवि शंकर (अधिवक्ता)

प्रबंधन
राजेश कुमार सिन्हा

संपादकीय कार्यालय
संपादकीय, सदस्यता एवं विज्ञापन
नेचर फाउंडेशन, सेंट्रल स्कूल के समीप
पो. नामकूम, सिदरौल, रांची, झारखंड, पिन-834010

कोलकाता कार्यालय
ग्राउंड फ्लोर, 131/24, रीजेंट पार्क गवर्नमेंट क्वार्टर,
कोलकाता, पिन-700040

पटना कार्यालय
201, दीपराज कॉम्प्लेक्स, आर्य कुमार रोड,
दिनकर गोलंबर, पटना 834004

स्वामी, मुद्रक और प्रकाशक **मधु** द्वारा झारखंड प्रिंटर्स प्रा. लि., 6A, गुरुनानक नगर, साकची, **जमशेदपुर** से मुद्रित व नेचर फाउंडेशन, सेंट्रल स्कूल के समीप पो. नामकूम, सिदरौल, **रांची**, झारखंड से प्रकाशित।

आरएनआई नंबर: JHAHIN/2016/68667

पोस्टल रजिस्ट्रेशन नंबर: RN/248/2016-18

बसंत पंचमी

बसंत पंचमी। मां सरस्वती के पूजन का दिन। रति और कामदेव से आशीर्वाद लेने का दिन। प्रकृति के बदलने का दिन। सूखे पत्तों के टूट कर गिरने और नए कोंपलों के खिलने का दिन। एक दिन। एक त्यौहार। उसकी हजार विधियों से पूजा-अर्चना। भारतीय परंपरा में काम का भी महत्व है, रति का भी, वीणावादिनी का भी और हरे-हरे, नए-नए कोंपलों का भी।

फणीश्वर नाथ रेणु ने इसी बसंत के साथ फगुआ को जोड़ कर लिखा है...

यह फागुनी हवा...
मेरे दर्द की दवा
ले आई...ई...ई...ई
मेरे दर्द की दवा!
आंगन बोले कागा
पिछवाड़े कूकती कोयलिया
मुझे दिल से दुआ देती आई
कारी कोयलिया-या
मेरे दर्द की दवा
ले के आई-ई-दर्द की दवा!
वन-वन
गुन-गुन
बोले भौंरा
मेरे अंग-अंग झनन
बोले मृदंग मन--
मीठी मुरलिया!
यह फागुनी हवा
मेरे दर्द की दवा ले के आई
कारी कोयलिया!
अग-जग अंगड़ाई लेकर जागा
भागा भय-भरम का भूत
दूत नूतन युग का आया
गाता गीत नित्य नया
यह फागुनी हवा

बसंत ऋतु में सब कुछ बदल जाता है। आलस्य का स्थान कर्मठता ले लेती है। नदियों की धार वेगमय हो जाती है। कोयल की कूक से मन नाच उठता है। तरूणाई अंगड़ाई लेती है। प्रकृति मानों सोलहों ऋंगार करके सज-संवर कर लोगों का स्वागत करती है। हवा में आम के मंजरों का मदहोश कर देने वाला सुगंध होता है तो महुए की महक लोगों के सुध-बुध चुरा लेती है। मादा पशु प्रजनन की तैयारी में होती हैं तो पत्र-बिल्लव टूट कर जमीन पर गिरने को आतुर रहते हैं कि कब वे महादेव के कंठों में शोभित हों। विद्यार्थी वाग्देवी की पूजा हेतु उद्यत रहते हैं तो गुरुजन बच्चों को शिक्षित करने हेतु कमर कस कर तैयार रहते हैं। सुबह अलबेली, शाम सुरमई। सूरज देव अपनी छटा बिखेरते हैं तो चांद अपनी शीतलता। न सर्द, न गर्म। कहते हैं, बसंत तो बस बसंत ही है।

(अंशुल शरण)

तेजी से गिर रहा भूजल

■ दयानिधि

भूजल दुनिया भर के कई घरों, खेतों, उद्योगों और शहरों के लिए पानी का मुख्य स्रोत है। पानी की अंधाधुंध निकासी और जलवायु में बदलाव के कारण भूजल स्तर गिर रहा है, जिससे पानी की कमी के आसार बढ़ गए हैं। कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय, सांता बारबरा (यूसी सांता बारबरा) के शोधकर्ताओं ने दुनिया भर में भूजल स्तर का सबसे बड़ा आकलन किया है, जो लगभग 1,700 जल निकायों तक फैला हुआ है। नेचर नामक पत्रिका में प्रकाशित अध्ययन से पता चला है कि दुनिया भर में भूजल तेजी से घट रहा है। घटते जल संसाधनों पर चिंता जताने के अलावा यह शोध इस बात पर भी प्रकाश डालता है कि भूजल की कमी को कैसे दूर किया जा सकता है। यह अध्ययन दुनिया भर में भूजल में हो रहे बदलाव को समझने के लिए काम कर रहे वैज्ञानिकों, नीति निर्माताओं और संसाधन प्रबंधकों के लिए एक महत्वपूर्ण है। यूसी सांता बारबरा के पर्यावरण अध्ययन कार्यक्रम में एसोसिएट प्रोफेसर और प्रमुख अध्ययनकर्ता डेबरा पेरोन ने कहा, हम लाखों भूजल स्तर मापों के आधार पर दुनिया भर में भूजल की स्थिति को बेहतर ढंग से समझना चाहते थे। टीम ने राष्ट्रीय और उपराष्ट्रीय रिकॉर्ड और अन्य एजेंसियों से आंकड़ों को संकलित किया। अध्ययनकर्ता ने बताया कि इस अध्ययन में तीन साल का समय लगा, जिनमें से दो साल केवल आंकड़ों में सुधार करने और उनको छांटने में बीते। पिछले 100 वर्षों में 15 लाख कुओं से 30 करोड़ जल स्तर की मापों को समझने के लिए यह जरूरी था। इसके बाद दुनिया भर के भूजल रुझानों के विशाल आंकड़ों को वास्तविकता में बदलने का काम किया गया। इसके बाद शोधकर्ताओं ने जांच किए गए क्षेत्रों में जलभृत सीमाओं के पुनर्निर्माण और 1,693 जलभृतों में भूजल स्तर के रुझानों का मूल्यांकन करने के लिए 1,200 से अधिक प्रकाशनों का अध्ययन किया। अध्ययनकर्ता ने बताया, उनके निष्कर्ष दुनिया भर में भूजल स्तर का अब तक का सबसे व्यापक विश्लेषण प्रदान करते हैं और भूजल की भारी कमी को उजागर करते हैं। आंकड़ों के विश्लेषण से पता चला कि 71 प्रतिशत जलभृतों में भूजल में गिरावट आ रही है। यह कमी कई स्थानों पर तेज हो रही है 1980 और 90 के दशक में भूजल में गिरावट की दर 2000 से वर्तमान तक तेज हो गई है, जो इस बात पर प्रकाश डालता है कि कैसे एक समस्या और भी बदतर हो गई है। तेजी से गिरावट लगभग तीन गुना अधिक स्थानों पर हो रही है। विश्वविद्यालय के ब्रेन स्कूल ऑफ एनवायर्नमेंटल साइंस एंड में एसोसिएट प्रोफेसर, सह-प्रमुख अध्ययनकर्ता स्कॉट जसेचको ने कहा, शुष्क जलवायु में भूजल का गहरा होना अधिक आम है, विशेष रूप से खेती के तहत शुष्क और अर्ध-शुष्क भूमि में तेजी से गिरावट होती है। लेकिन किसी चीज का सहज होना एक बात है, यह दिखाना बिल्कुल दूसरी बात है कि यह वास्तविक दुनिया के आंकड़ों के साथ हो रहा है। उन्होंने कहा दूसरी ओर, ऐसे स्थान भी हैं जहां जल स्तर स्थिर हो गया है या ठीक हो गया है।

1980 और 90 के दशक में भूजल में गिरावट वाले 16 प्रतिशत जलभृत प्रणालियों में जल स्तर ठीक हो गया है, जिसके अध्ययनकर्तओं के पास ऐतिहासिक आंकड़े थे। हालांकि, ये मामले संयोग से होने वाली अपेक्षा से केवल आधे ही सामान्य हैं। जसेचको ने कहा, इस अध्ययन से पता चलता है कि यह लोग चाहें तो कई तरह के प्रयासों से चीजों को बदल सकते हैं। उदाहरण के लिए टक्सन, एरिजोना को लें। कोलोराडो नदी से आवंटित पानी का उपयोग पास की अव्रा घाटी में जलभृत को फिर से भरने के लिए किया जाता है। परियोजना भविष्य में उपयोग के लिए पानी का भंडारण करती है। जसेचको ने बताया, भूजल को अक्सर पानी के बैंक खाते के रूप में देखा जाता है। जलभृतों को फिर से भरने से हमें जरूरत के समय तक उस पानी को संग्रहित करने में मदद मिलती है। ■

पुंगनूर पर उमड़ा पीएम का प्रेम

■ युगांतर प्रकृति नेटवर्क

मकर संक्रांति के शुभ अवसर पर देश के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी अपने आवास पर गायों को चारा खिलाते नजर आए। जैसे ही मोदी ने ये तस्वीरें अपने सोशल मीडिया पर अपलोड कीं, तस्वीर देखकर लोग एक बार फिर मोदी के फैन हो गए। हिंदू संस्कृति और सभ्यता के अनुसार शुभ दिन पर गौ माता की पूजा की जाती है और उन्हें चारा खिलाया जाता है। ऐसे में मकर संक्रांति के मौके पर मोदी ने इस खास पुंगनूर किस्म की गाय को चारा भी खिलाया। यह पहली बार नहीं है कि पीएम मोदी का गौ प्रेम सामने आया है। इससे पहले पिछले साल पीएम मोदी वारंगल शहर के भद्रकाली मंदिर में गौ सेवा करते नजर आए थे। तस्वीरों में साफ नजर आ रहा है कि पीएम मोदी बड़े प्यार से गाय को गुड़ और घास खिला रहे हैं। इस दौरान पीएम मोदी के आसपास गायों का झुंड नजर आ रहा है। कभी एक साथ मुलाकात तो कभी घास लेकर पीएम मोदी पुंगनूर गायों को चारा खिलाते नजर आए। तस्वीरें देखकर हर कोई इस खास किस्म की गाय के बारे में जानने को उत्सुक है। आइए पुंगनूर नस्ल की गाय के बारे में विस्तार से जानते हैं।

क्या है पुंगनूर नस्ल की गाय?

आंध्र प्रदेश के काकीनाडा में एक डॉक्टर ने 14 साल की अथक मेहनत के बाद पुंगनूर गाय की नस्ल में सुधार किया है। पुंगनूर को सबसे छोटी गाय का दर्जा प्राप्त है। इस वैद्य ने नस्ल सुधार के बाद ढाई फीट की पुंगनूर गाय विकसित की है। उन्होंने इस गाय का नाम मिनिएचर पुंगनूर रखा। हालाँकि, पुंगनूर की सामान्य ऊंचाई तीन से पांच फीट के बीच है जबकि लघु पुंगनूर की ऊंचाई ढाई फीट तक होती है। नस्ल सुधार के बाद तैयार इस ब्रीड को विकसित करने वाले वैद्य का नाम है डॉ. कृष्णम राजू। डॉ. राजू गौशाला चलाते हैं और इस गौशाला का नाम नाड़ीपति गोशाला है।

पुंगनूर गाय का इतिहास

डॉ. राजू के अनुसार, जब पुंगनूर का जन्म होता है तो उसकी ऊंचाई 16 इंच से 22 इंच तक होती है लेकिन लघु पुंगनूर की ऊंचाई 7 इंच से 12 इंच तक ही होती है। पुंगनूर 112 साल पुरानी नस्ल है जबकि मिनिएचर पुंगनूर को 2019 में विकसित किया गया था। राजू के मुताबिक, असली पुंगनूर वैदिक काल में ऋषि वशिष्ठ और विश्वामित्र के समय में मौजूद था लेकिन जैसे-जैसे जलवायु बदली और स्थान बदला, पुंगनूर की ऊंचाई बढ़ती गई। पहले पुंगनूर की ऊंचाई ढाई से तीन फीट होती थी और इसे ब्रह्मा नस्ल कहा जाता था। पुंगनूर नस्ल के दूध में वसा की मात्रा ज्यादा होती है। इसके अलावा यह औषधीय गुणों से भरपूर होता है। आपकी जानकारी के लिए बता दें कि गाय के दूध में आमतौर पर वसा की मात्रा 3 से 3.5 प्रतिशत तक होती है, जबकि पुंगनूर नस्ल के दूध में 8 प्रतिशत वसा होता है।

पुंगनूर गाय की औसत दूध उपज

पुंगनूर गाय की औसत दूध उपज 1-3 लीटर प्रतिदिन होती है। वहीं, यह एक दिन में लगभग 5 किलो चारा खाती है। पुंगनूर गाय की सबसे अच्छी विशेषता यह है कि यह नस्ल सूखा प्रतिरोधी होती है। पशुधन जनसंख्या-2013 के मुताबिक, आंध्र प्रदेश में पुंगनूर गायों की संख्या सिर्फ 2,772 थी, लेकिन पिछले कुछ सालों में पुंगनूर नस्ल के संरक्षण पर काफी काम हुआ है। वहीं, 2019 में की गई 20वीं पशुधन जनगणना और एनबीएजीआर के मुताबिक, पुंगनूर गायों की संख्या 13275 है।

ध्यान देने वाली बात यह है कि यह देश में सबसे कम संख्या वाली गायों की नस्लों में तीसरे स्थान पर है। अगर सबसे कम संख्या वाली गाय के नस्लों की बात करें तो बेलाही नस्ल की गायों की संख्या सबसे कम 5264 है। दूसरे नंबर पर पणिकुलम गायें है जिनकी संख्या 13934 है।

14 फरवरी को 'काउ हग डे' मनाएं

पशु कल्याण बोर्ड ने अपील की है कि 14 फरवरी को 'वैलेंनटाइन डे' के तौर पर सेलिब्रेट करने के बजाए 'काउ हग डे' के रूप में मनाएं और गाय को गले लगाकर उनसे प्यार जताएं। पूरी दुनिया में फरवरी को प्रेम का महीना कहा जाता है। खासतौर पर 7 फरवरी से लेकर 14 फरवरी तक वेलेंटाइन वीक मनाया जाता है। इस दौरान प्रेमी जोड़े एक दूसरे के लिए अपने प्यार का इज़हार करते हैं और तरह-तरह उपहार भी देते हैं। पश्चिमी संस्कृति में वेलेंटाइन वीक को प्यार जताने का अच्छा अवसर मानते हैं। वैसे तो भारत में भी अब प्रेमी जोड़ों में वेलेंटाइन वीक का चलन बढ़ रहा है, लेकिन ये जरूरी तो नहीं कि आप सिर्फ इंसानों से ही प्यार करें, पशुओं पर थोड़ा प्रेम और स्नेह न्यौछावर कर सकते हैं। एनिमल वेल्फेयर बोर्ड की अपील को काबिल-ए-तारीफ बताया जा रहा है। अपने एक बयान में एनिमल वेलफेयर बोर्ड ने आग्रह किया है कि 14 फरवरी को वेलेंटाइन डे मनाने के बजाए 'काउ हग डे' के तौर पर मनाएं और गाय को गले लगाकर उनसे थोड़ा प्यार जताएं।

गाय को गले लगाने का वैज्ञानिक महत्व

आपको जानकर हैरानी होगी, लेकिन पशु कल्याण बोर्ड की एक अपील में विज्ञान छिपा हुआ है। बीबीसी की एक रिपोर्ट में बताया जा चुका है कि गाय को गले लगाना सिर्फ उनकी सेहत के लिए ही नहीं, बल्कि इंसानों की हेल्थ के लिए भी काफी अच्छा है। इससे शरीर को सकारात्मक ऊर्जा मिलती है और तनाव कम करने वाले ऑक्सिटॉसिन हार्मोन भी बढ़ते है। बता दें कि ये हार्मोन सोशल बांडिंग के वक्त शरीर में बनते हैं। इसके अलावा पालतू जानवरों के साथ थोड़ा समय बिताने, उनके साथ खेलने और बैठने से मन को शांति मिलती है। पशु कल्याण बोर्ड ने अपील की है कि 14 फरवरी को 'वैलेंनटाइन डे' के तौर पर सेलिब्रेट करने के बजाए 'काउ हग डे' के रूप में मनाएं।

साल 2017 में बड़ा पालतू-दुधारु जानवरों पर हुए एक रिसर्च से यह भी पता चला कि गाय की गर्दन और पीठ को कुछ समय तक सहलाया जाए तो गाय को काफी आराम मिलता है और वो इंसान को पहचानने लग जाती है। गाय को एक कंफर्ट जोन मिल जाता है। यही वजह है कि गांव में रहने वाले लोग, किसान और पशुपालक सिर्फ गाय को पशु की तरह नहीं देखते, बल्कि परिवार के एक सदस्य की तरह ही पालते हैं। बेहतर दूध उत्पादन और पशु को सुरक्षित फील करवाने के लिए भी उन्हें गले लगाने का चलन वर्षों से चला आ रहा है। जानकारी के लिए बता दें कि गाय को गले लगाना कोई नया कांसेप्ट नहीं है, बल्कि भारत से लेकर नीदलैंड्स के ग्रामीण इलाकों में काउ हगिंग को थेरेपी बताया गया है। इसे 'को नफलेन' थेरेपी कहते हैं, जिससे गाय के साथ-साथ उसे गले लगाने वाले इंसान का मानसिक स्वास्थ्य बेहतर रहता है।

आओ गाय से प्रेम करें

■ युगांतर प्रकृति नेटवर्क

अग्रंमग्रं चरंतीना, औषधिना रसवने। तासां ऋषभपत्नीना, पवित्रकायशोधनम्।।
यन्मे रोगांश्चशोकांश्च, पांप में हर गोमय

अर्थात वन में अनेक औषधि के रस का भक्षण करने वाली गाय, उसका पवित्र और शरीर शोधन करने वाला गोबर।
तुम मेरे रोग और मानसिक शोक और ताप का नाश करो।

- गोमय वसते लक्ष्मी– वेदों में कहा गया है कि गाय के गोबर लक्ष्मी का वास होता है। गोमय गाय के गोबर रस को कहते है। यह कसैला एंव कड़वा होता है तथा कफजन्य रोगों में प्रभावशाली है। गोबर को गोविन्द, गोशकृत,गोपुरीष,गोविष्ठा,गोमल आदि नामों से भी जाना जाता है।
- गोबर गणेश की प्रथम पूजा होती है और वह शुभ होता है। मांगलिक अवसरों पर गाय के गोबर का प्रयोग सर्वविदित है। जलावन एवं जैविक खाद आदि के रूप में गाय के गोबर की श्रेष्ठता जगत प्रसिद्ध है।
- गाय का गोबर दुर्गन्धनाशक,शोधक,क्षारक,वीर्यवर्धक, पोषक,रसयुक्त, कान्तिप्रद और लेपन के लिए स्निग्ध तथा मल आदि को दूर करने वाला होता है।
- गोबर मे नाईट्रोजन,फास्फोरस,पोटेशियम,आयरन, जिंक, मैग्निज, ताम्बा, बोरोन, मोलीब्डनम्, बोरेक्स, कोबाल्ट-सलफेट, चूना, गंधक, सोडियम आदि मिलते हैं।
- गाय के गोबर में एन्टिसेप्टिक,एन्टिडियोएक्टिव एंव एन्टिथर्मल गुण होता है गाय के गोबर में लगभग 16 प्रकार के उपयोगी खनिज तत्व पाये जाते हैं।
- मैकफर्सन के अनुसार, गोबर के समान सुलभ कीटनाशक द्रव्य दूसरा नहीं है। रूसी वैज्ञानिक के अनुसार आण्विक विकिरण का प्रतिकार करने में गोबर से पुती दीवारें पूर्ण सक्षम हैं। भोजन का आवश्यक तत्व विटामिन बी-12 शाकाहारी भोजन में नहीं के बराबर होता है।
- गाय की बड़ी आँतो में विटामिन बी-12 की उत्पत्ति प्रचूर मात्रा में होती है पर वहाँ इसका अवशोषण नहीं हो पाता। अतः यह विटामिन गोबर के साथ बहार निकल आता है। प्राचीनकाल में ऋषि-मूनि गोबर के सेवन से पर्याप्त विटामिन बी-12 प्राप्त कर स्वास्थ्य लाभ लेते थे।गोबर के सेवन तथा लेपन से अनेक व्याधियाँ समाप्त होती है।
- प्रो.जी.ई. बीगेंड,- इटली के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक ने गोबर पर सतत प्रयोग से सिद्ध किया कि गोबर में मलेरिया एंव क्षयरोग के जीवाणुओ को तुरन्त नष्ट करने की क्षमता होती है।
- गाय का गोबर मल नहीं है, यह मलशोधक है, दुर्गन्धनाशक है व उत्तम वृद्धिकारक तथा मृदा उर्वरता पोषक है। यह त्वचा रोग खाज, खुजली, श्वासरोग,जोड़ों के दर्द सायटिका आदि में लाभदायक है। गोबर में बारीक सूती कपड़े को गोबर को दबाकर छोड दे थोड़ी देर बाद इस कपड़े को निचोड़कर गोमय प्राप्त कर सकते है।

लक्ष्मीश्च गोमय नित्यं पवित्रा सर्वमङ्गला। गोमयालेपनं तस्मात् कर्तव्यं पाण्डुनन्दन।।

अर्थात- गाय के गोबर में परम पवित्र सर्वमंगलमयी श्री लक्ष्मी जी नित्यनिवास करती है, इसलिए गोबर से लेपन करना चाहिए।

- सामान्यता गोमय कटु-उष्ण, वीर्यवर्धक, त्रिदोषशामक तथा कुष्ठघ्न,छर्दिनिग्रहण, रक्तशोधक, श्वासघ्न और विष्घ्न है। यह विष नाशक है। विषों में गोमय-स्वरस का लेप एंव अंजन उपयोगी साबित हुए है। गाय का गोबर तिमिर रोग में ,नस्य रूप में प्रयुक्त होता है। बिजौरा नींबू की जड़,गौघृत,मनःशिला को गोमय में पीसकर लेप करने से मुख की कान्ति बढ़ती है।
- आग से जल जाने पर गोबर का लेपन रामबाण औषधि है। ताज़ा गोबर का बार-बार लेप करते हुए उसे ठंडे पानी से धोते रहना चाहिए यह व्रणरोपण एंव कीटाणु नाशक है।
- सर्पदंश, विषधर साँप, बिच्छु या अन्य जीव के काटने पर रोगी को गोबर पिलाने तथा शरीर पर गोबर का लेप करने से विष नष्ट होता है अति विषाक्ता की अवस्था में मस्तिष्क तथा हृदय को सुरक्षित रखता है। बिच्छु के काटने पर उस स्थान पर गोबर लगाने से भी उसका जहर उतर जाता है।
- पञ्चगव्य घृत के सेवन से उन्माद ,अपस्मार शोथ, उदररोग, बवासीर, भगंदर ,कामला,विषमज्वर तथा गुल्म का निवारण होता है। मनोविकारों को दूर कर पञ्चगव्य घृतस्ननायुतंत्र को परिपुष्ट करता है।
- चेन्नई के डा. किंग के अनुसार गाय के गोबर किटाणु मारने की क्षमता रहती है। इसमें ऐसी बीमारी के समय दूषित पानी में गाय का गोबर पानी में मिलाकर पानी शुद्ध कर उपयोग से प्लेग नहीं होता है। जिस भाग में बिजली का करन्ट लगा हो उस भाग पर गाय का गोबर लगाने से बिजली के करन्ट के असर में कमी आती है।
- गाय के गोबर से बनी राख का उपयोग किसान भाई अपनी फसल को किटाणुओ, बीमारीयों व जीव-जन्तुओ से बचाने के लिए आदिकाल से प्रयोग करते आ रहे है।
- वैज्ञानिकों के अनुसार सेन्द्रिय खाद से पैदा किया आनाज खाने से हार्टअटैक नहीं होता है क्योंकि देशी खाद से शरीर द्वारा चाही गयी 400 मिलीग्राम मैग्निशियम तत्व की मात्रा मिलती है। जो रासायनिक खाद में नहीं मिलती है। मेग्नेशियम तत्व शरीर में रक्तप्रवाह के लिए रहना आवश्यक है।
- अग्निहोत्र जो कि यज्ञ का आधार है, पुरातन वैदिक विज्ञान की अनमोल देन है। गोबर से बनी यज्ञ समिधा का गौघृत के साथ उपयोग आदि काल से करते आ रहे है। अग्निहोत्र से कई क्षेत्रों में जैसे कृषि, वातावरण, जैव प्रजन्न व मनचिकित्सा तथा प्रदूषण दूर करने में विस्मयकारी रूप से लाभ होता है।
- गोबर के कंडों से किये गये अग्निहोत्र से सूक्ष्मऊर्जा,तरगें ,एवं पौष्टिक वायु वातावरण में निःसृत होते है। जिसमें वनस्पतियों को पोषण प्राप्त होकर फसल में वृद्धि होती है। पशुधन के स्वास्थ्य में सुधार तथा दूग्ध की गुणवत्ता में और प्रमाण में वृद्धि होती है। केचुएँ व मधुमक्खियों में भी वृद्धि पायी जाती है। अग्निहोत्र का भस्म एक उत्तम खाद है एंव कीटनियंत्रक औषध बनाने में भी उपयोगी है। अग्निहोत्र की भस्म से बीज प्रक्रिया एंव बीज संस्कार अंकुरण अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से होता है।
- पसीना बंद करने के लिए सुखाये हुए गोबर और नमक के पुराने मिट्टी के बर्तन इन दोनो के चूर्ण का शरीर पर लेप करना चाहिए।और गुदाभ्रंश के लिए गोबर गर्म करके सेंक करना चाहिए।और खुजली के लिए गोबर शरीर में लगाकर गरम पानी से स्नान करना चाहिए।
- शीतला माता के फूट निकले छालों पर गाय के गोबर को सुखाकर जलाकर राख को कपडें में छानकर उससे भर दें।इसपर यही श्रेष्ठ उपाय है।और साधारण व्रण (घाव) के ऊपर घी में राख मिलाकर लेप करना चाहिए।गाय के ताजे गोबर की गन्ध से बूखार एंव मलेरिया रोगाणु का नाश होता है (डा.बिग्रेड,इटली)

- पेट में छोटे -छोटे कीडे हुए हो तो, गोबर की सफेद राख 2 तोला लेकर 10 तोला पानी मिलाकर ,पानी कपडें में छान लें। तीन दिन तक सुबह – शाम यही पानी पीलायें।और रतौंधी में ताजे गोमय को लेकर के आँख में आँजने से दस दिन में रोग से छुटकारा हो जायेगा।
- दाँत की दुर्गन्ध,जन्तु और मसूडें के दर्द पर गाय के गोबर को जलावें ,जब उसका धुआं निकल जायें तब उसे पानी में डालकर बुझा लें ,सुख जाने पर चूर्ण बनाकर कपडछान कर लें ,इस मंजन से प्रतिदिन दाँत साफ़ करने से दाँत के सब रोग नष्ट हो जाते है।
- आयुर्वेदानुसार गाय के सूखे गोबर पावडर से धूम्रपान करने से दमे, श्वास के रोगी ठीक होते है।और हैजा के कीटाणु से बचने के लिए शुद्ध पानी में गोबर घोल कर छानकर पीने से कीटाणुओं से बचाव होता है और हैजा से मुक्त रहते है।(डाकिंग। मद्रास)। ■

आर्द्रभूमि और मानव कल्याण

सबसे पहले यह जानना समीचीन होगा कि आर्द्रभूमि की परिभाषा क्या है। इसे आसान शब्दों में ऐसे समझें कि आर्द्रभूमि वे क्षेत्र हैं जहां पानी मिट्टी को ढक लेता है, या पूरे वर्ष मिट्टी की सतह पर या उसके निकट मौजूद रहता है या वर्ष के दौरान अलग-अलग समय के लिए, जिसमें बढ़ते मौसम के दौरान भी मौजूद रहता है।

■ शुभम मित्तल

श्वि आर्द्रभूमि दिवस 2024 थीम

विश्व आर्द्रभूमि दिवस 2024 का आधिकारिक विषय ₹आर्द्रभूमि और मानव कल्याण₹ है। यह विषय जीवन के विभिन्न पहलुओं में मानव कल्याण का समर्थन करने में आर्द्रभूमि द्वारा निभाई जाने वाली महत्वपूर्ण भूमिका पर जोर देता है। 'आर्द्रभूमि और मानव कल्याण' पर ध्यान केंद्रित करके , विश्व आर्द्रभूमि दिवस 2024 दुनिया भर में व्यक्तियों, समुदायों और सरकारों के लिए आर्द्रभूमि के महत्वपूर्ण महत्व को पहचानने और वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों के लिए उनकी रक्षा के लिए ठोस कदम उठाने के आह्वान के रूप में काम करेगा।

आर्द्रभूमियों के प्रकार

दलदल : नरकट और घास जैसे शाकाहारी पौधों का प्रभुत्व।

दलदल : पेड़ों और झाड़ियों जैसे लकड़ी के पौधों का प्रभुत्व।

दलदल : कम पोषक तत्वों के साथ पीट बनाने वाली अम्लीय आर्द्रभूमि।

फ़ेंस : उच्च पोषक तत्वों के साथ पीट बनाने वाली आर्द्रभूमि।

मुहाना : जहां मीठा पानी खारे पानी से मिलता है, एक अद्वितीय पारिस्थितिकी तंत्र का निर्माण करता है।

आर्द्रभूमियों का महत्व

जल शोधन: पानी से प्रदूषकों और अशुद्धियों को फ़िल्टर करें।

बाढ़ नियंत्रण: अतिरिक्त पानी को सोखें और संग्रहित करें, जिससे बाढ़ का खतरा कम हो जाएगा।

जलवायु परिवर्तन शमन: कार्बन सिंक के रूप में कार्य करें, कार्बन डाइऑक्साइड का भंडारण करें और ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करें।

जैव विविधता हॉटस्पॉट: विभिन्न प्रकार के पौधों और जानवरों के लिए आवास प्रदान करें।

आर्थिक लाभ: पर्यटन, मत्स्य पालन, कृषि और अन्य आर्थिक गतिविधियों का समर्थन करें।

सांस्कृतिक महत्व: दुनिया भर के कई समुदायों के लिए सांस्कृतिक और आध्यात्मिक महत्व रखता है।

आर्द्रभूमियों को खतरा

प्रदूषण: कृषि भूमि, कारखानों और शहरी क्षेत्रों से होने वाला अपवाह आर्द्रभूमियों को प्रदूषित करता है और उनके पारिस्थितिकी तंत्र को नुकसान पहुँचाता है।

आवास विनाश: विकास के लिए जल निकासी, ड्रेजिंग और आर्द्रभूमि को भरने से पौधों और जानवरों के लिए महत्वपूर्ण आवास नष्ट हो जाते हैं।

जलवायु परिवर्तन: समुद्र के बढ़ते स्तर, वर्षा के पैटर्न में बदलाव और बढ़ते तापमान से आर्द्रभूमियों के स्वास्थ्य और अस्तित्व को खतरा है।

आर्द्रभूमि और एसडीजी

वेटलैंड्स कई सतत विकास लक्ष्यों (एसडीजी) को प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

लक्ष्य 6, सभी के लिए पानी और स्वच्छता की उपलब्धता और टिकाऊ प्रबंधन सुनिश्चित करने पर केंद्रित है, विशेष रूप से लक्ष्य 6।6, पानी से संबंधित पारिस्थितिक तंत्र की सुरक्षा और बहाली पर जोर देता है। लक्ष्य 14, जो महासागरों, समुद्रों और समुद्री संसाधनों के संरक्षण और टिकाऊ उपयोग पर केंद्रित है, में लक्ष्य 14।2 शामिल है, जो समुद्री और तटीय

पारिस्थितिक तंत्र के स्थायी प्रबंधन और सुरक्षा की वकालत करता है।
इसके अतिरिक्त, लक्ष्य 15 , भूमि पर जीवन को संबोधित करते हुए, लक्ष्य 15।1 पर प्रकाश डालता है, जिसका उद्देश्य स्थलीय और अंतर्देशीय मीठे पानी के पारिस्थितिकी तंत्र और उनकी सेवाओं के संरक्षण, बहाली और टिकाऊ उपयोग को सुनिश्चित करना है।

विश्व आर्द्रभूमि दिवस का इतिहास

30 अगस्त, 2021 को संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 2 फरवरी को विश्व वेटलैंड दिवस के रूप में घोषित किया। यह आर्द्रभूमि के तेजी से हो रहे नुकसान को रोकने और उनके संरक्षण और बहाली को बढ़ावा देने की तत्काल आवश्यकता पर ध्यान आकर्षित करता है। यह तिथि 1971 में कैस्पियन सागर के तट पर ईरान के रामसर में 'अंतर्राष्ट्रीय महत्व के आर्द्रभूमि पर सम्मेलन' को अपनाने की याद दिलाती है।
172 देशों द्वारा अपनाया गया रामसर कन्वेंशन, संरक्षित क्षेत्रों के निर्धारण, प्रभावी नीतियों और ज्ञान के आदान-प्रदान के माध्यम से आर्द्रभूमि के संरक्षण और बुद्धिमानी से उपयोग की सुविधा प्रदान करता है। कन्वेंशन में शामिल होने वाले प्रत्येक देश को कम से कम एक आर्द्रभूमि को अंतर्राष्ट्रीय महत्व की आर्द्रभूमि की सूची में शामिल करने के लिए नामित करना होगा, जिसे रामसर साइट्स के रूप में जाना जाता है।

रामसर कन्वेंशन

अंतर्राष्ट्रीय महत्व के वेटलैंड्स पर रामसर कन्वेंशन, विशेष रूप से जलपक्षी आवास के रूप में, जिसे वेटलैंड्स पर कन्वेंशन के रूप में भी जाना जाता है, एक अंतरराष्ट्रीय संधि है जो वेटलैंड्स और उनके संसाधनों के संरक्षण और बुद्धिमान उपयोग के लिए राष्ट्रीय कार्रवाई और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के लिए रूपरेखा प्रदान करती है।
अपनाया गया: 2 फरवरी 1971, ईरानी शहर रामसर में।
लागू हुआः 21 दिसंबर, 1975।
हस्ताक्षरकर्ता: 172 देश (26 अक्टूबर, 2023 तक)।

रामसर कन्वेंशन के उद्देश्य

- दुनिया भर में आर्द्रभूमियों की हानि को रोकना और उनके संरक्षण को बढ़ावा देना।
- आर्द्रभूमियों और उनके संसाधनों के बुद्धिमानीपूर्ण उपयोग को बढ़ावा देना।
- आर्द्रभूमि संरक्षण और प्रबंधन पर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सहयोग करना।

रामसर कन्वेंशन की मुख्य विशेषताएं

साइट पदनाम: अनुबंध करने वाली पार्टियाँ अपने पारिस्थितिक, जैविक, सांस्कृतिक या जलवैज्ञानिक महत्व के आधार पर आर्द्रभूमियों को अंतर्राष्ट्रीय महत्व की आर्द्रभूमियों की सूची (रामसर सूची) में शामिल करने के लिए नामित करती हैं।

बुद्धिमान उपयोग सिद्धांत: आर्द्रभूमि के उपयोग को इस तरह से बढ़ावा देता है जिससे उनकी दीर्घकालिक स्थिरता और मनुष्यों और प्रकृति को उनके द्वारा प्रदान किए जाने वाले लाभ सुनिश्चित हो सकें।
अंतर्राष्ट्रीय सहयोग: आर्द्रभूमि संरक्षण के लिए ज्ञान, विशेषज्ञता और संसाधनों को साझा करने के लिए देशों के बीच सहयोग को प्रोत्साहित करता है।

रामसर कन्वेंशन के लाभ

आर्द्रभूमि संरक्षण: आर्द्रभूमियों के संरक्षण और बुद्धिमानीपूर्ण उपयोग के लिए एक वैश्विक रूपरेखा प्रदान करता है।
जैव विविधता संरक्षण: पौधों और जानवरों की एक विस्तृत श्रृंखला के लिए महत्वपूर्ण आवासों की रक्षा करता है।
जल संसाधन प्रबंधन: जल आपूर्ति को विनियमित करने और बाढ़ को नियंत्रित करने में मदद करता है।
जलवायु परिवर्तन शमनः आर्द्रभूमियाँ कार्बन डाइऑक्साइड के भंडारण और ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करने में भूमिका निभाती हैं।
आर्थिक लाभ: आर्द्रभूमियाँ पर्यटन, मत्स्य पालन और अन्य आर्थिक गतिविधियों का समर्थन करती हैं।

चुनौतियां

आर्द्रभूमि का नुकसान और क्षरण: कृषि, प्रदूषण और बुनियादी ढांचे के विकास जैसी मानवीय गतिविधियों के कारण आर्द्रभूमि का नुकसान और क्षरण जारी है।
जलवायु परिवर्तन: जलवायु परिवर्तन आर्द्रभूमियों के लिए एक महत्वपूर्ण खतरा पैदा करता है, जिसके प्रभाव समुद्र के बढ़ते स्तर और वर्षा के पैटर्न में बदलाव जैसे हैं।
संसाधनों की कमी: कई देशों में रामसर कन्वेंशन को प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए आवश्यक वित्तीय और तकनीकी संसाधनों की कमी है।
रामसर कन्वेंशन दुनिया भर में आर्द्रभूमि की सुरक्षा और संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और कार्रवाई के लिए एक रूपरेखा प्रदान करता है। यह सुनिश्चित करने में मदद करता है कि आर्द्रभूमि का उपयोग वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों के लाभ के लिए बुद्धिमानी से और स्थायी रूप से किया जाए।

विश्व आर्द्रभूमि दिवस का महत्व

आर्द्रभूमि के लाभों पर प्रकाश डालना: इस दिन का उद्देश्य उन

विविध लाभों को उजागर करना है जो आर्द्रभूमि मनुष्यों को प्रदान करती है, जिसमें बाढ़ नियंत्रण, जल शुद्धिकरण, जलवायु परिवर्तन शमन और जैव विविधता के लिए समर्थन शामिल है। आर्द्रभूमियों के संरक्षण और बुद्धिमानीपूर्ण उपयोग को बढ़ावा देनाः यह दिन लोगों को आर्द्रभूमियों के संरक्षण और निरंतर उपयोग के लिए कार्रवाई करने के लिए प्रोत्साहित करता है। यह उनके दीर्घकालिक अस्तित्व और आने वाली पीढ़ियों को मिलने वाले लाभों को सुनिश्चित करता है। आर्द्रभूमियों के खतरों के बारे में जागरूकता बढ़ानाः इस दिन का उद्देश्य आर्द्रभूमियों के सामने आने वाले खतरों, जैसे प्रदूषण, अस्थिर भूमि उपयोग और जलवायु परिवर्तन के बारे में जागरूकता बढ़ाना है।

आर्द्रभूमि के खतरों को दूर करने के लिए कार्रवाई को प्रोत्साहित करनाः यह दिन व्यक्तियों, समुदायों और सरकारों को आर्द्रभूमि के खतरों को दूर करने और उनके संरक्षण को बढ़ावा देने के लिए ठोस कार्रवाई करने के लिए प्रोत्साहित करता है।

2 फरवरी 2024 विशेष दिन

2 फरवरी 2024 को, विश्व वेटलैंड्स दिवस मनाता है, जो 1971 में वेटलैंड्स पर रामसर कन्वेंशन पर हस्ताक्षर करने की याद दिलाता है। यह विशेष दिन मानव कल्याण को बढ़ावा देने में वेटलैंड्स की महत्वपूर्ण भूमिका के बारे में जागरूकता बढ़ाने के लिए एक वैश्विक मंच के रूप में कार्य करता है। पर्यावरण का संरक्षण। यह वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों के लाभ के लिए इन महत्वपूर्ण पारिस्थितिक तंत्रों की रक्षा करने की हमारी सामूहिक जिम्मेदारी की याद दिलाता है।

भारत में रामसर साइटें

अष्टमुडी वेटलैंड: केरल 19 aug 2022 614km2 area केरल के कोल्लम जिले में एक प्राकृतिक बैकवाटर। कल्लाड़ा और पल्लीचल नदियाँ इसमें बहती हैं। यह नींदकारा में समुद्र के साथ एक मुहाना बनाता है जो मछली पकड़ने का एक प्रसिद्ध बंदरगाह है। राष्ट्रीय जलमार्ग 3 इससे होकर गुजरता है। केरल की सबसे स्वादिष्ट बैकवाटर मछली, कांजीराकोड कयाल की करीमीन अष्टमुडी झील से है।

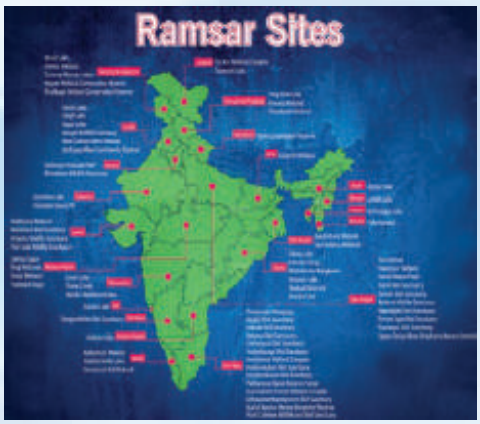

ब्यास संरक्षण रिजर्व	:	पंजाब
भितरकनिका मैंग्रोव	:	ओडिशा
भोज वेटलैंड्स	:	मध्य प्रदेश
चंद्र ताल	:	हिमाचल प्रदेश
चिलिका झील	:	ओडिशा
डीपोर बील	:	असम
पूर्वी कोलकाता वेटलैंड्स	:	पश्चिम बंगाल
हरिके	:	पंजाब
होकेरा वेटलैंड	:	जम्मू और कश्मीर
कांजली वेटलैंड	:	पंजाब
केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान	:	राजस्थान
केशोपुर-मियां कम्युनिटी रिजर्व	:	पंजाब
कोल्लेरू झील	:	आंध्र प्रदेश
लोकतक झील	:	मणिपुर
नालसरोवर पक्षी अभयारण्य	:	गुजरात
नंदुर मदमहेश्वर	:	महाराष्ट्र
नंगल वन्यजीव अभयारण्य	:	पंजाब
नवाबगंज पक्षी अभयारण्य	:	उत्तर प्रदेश
पार्वती आगरा पक्षी अभयारण्य	:	उत्तर प्रदेश
प्वाइंट कैलिमेरे वन्यजीव और पक्षी अभयारण्य	:	तमिलनाडु
पौंग बांध झील	:	हिमाचल प्रदेश
रेणुका झील	:	हिमाचल प्रदेश
रोपड़ वेटलैंड	:	पंजाब
रुद्रसागर झील	:	त्रिपुरा
समन पक्षी अभयारण्य	:	उत्तर प्रदेश
समसपुर पक्षी अभयारण्य	:	उत्तर प्रदेश
सांभर झील	:	राजस्थान
सैंडी पक्षी अभयारण्य	:	उत्तर प्रदेश
सरसई नवर झेल	:	उत्तर प्रदेश
सस्तमकोट्टा झील	:	केरल
सुरिनसर- मानसर झीलें	:	जम्मू और कश्मीर
त्सोमोरिरी	:	लद्दाख
ऊपरी गंगा नदी	:	उत्तर प्रदेश
वेम्बनाड कोल वेटलैंड	:	केरल
वुलर झील	:	जम्मू और कश्मीर
सुंदरबन वेटलैंड	:	पश्चिम बंगाल
आसन बैराज	:	उत्तराखंड
कंवर झील या कबाल ताल	:	बिहार
लोनार झील	:	महाराष्ट्र
सूर सरोवर	:	उत्तर प्रदेश
त्सो कर वेटलैंड कॉम्प्लेक्स	:	लद्दाख
मोती झील (बखिरा)	:	उत्तर प्रदेश

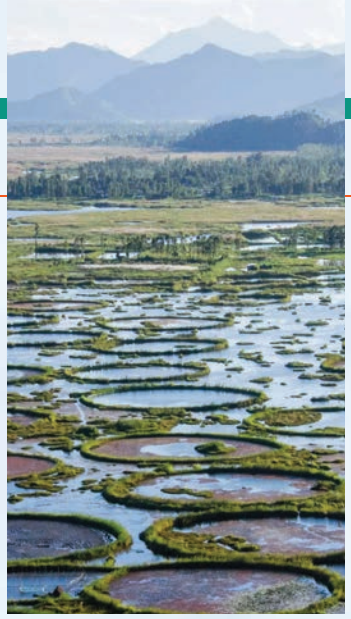

रामसर साइटें क्या हैं ?

हाल ही में पांच और रामसर साइटों को जोड़ने से विश्व स्तर पर भारत के आर्द्रभूमि समावेशन के स्तर में वृद्धि हुई है। नई साइटों की शुरुआत के बाद, भारत में अब कुल 54 रामसर-नामित आर्द्रभूमि हैं। रामसर सम्मेलन, जिसे वर्ष 1971 में शुरू किया गया था, रामसर स्थलों के संरक्षण और टिकाऊ उपयोग के लिए एक अंतर-सरकारी संधि है। आर्द्रभूमि सम्मेलन का नाम ईरान के रामसर शहर के नाम पर रखा गया है जहां इस पर पहली बार हस्ताक्षर किए गए थे। दक्षिण एशियाई देशों में भारत में रामसर साइटों की संख्या सबसे अधिक है।

सूची चिल्का झील और केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान को शामिल करने के साथ शुरू होती है - जो देश में पहला रामसर-मान्यता प्राप्त स्थल है। मानवता की भलाई और 2030 तक सतत विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए आर्द्रभूमि का संरक्षण एक आवश्यक कार्य है। विश्व धरोहर कन्वेंशन और वेटलैंड्स कन्वेंशन ने साइट-आधारित संरक्षण के लक्ष्य के साथ हाथ मिलाया है। इसमें झीलें और नदियाँ, भूमिगत जलभृत, दलदल और दलदल, गीली घास के मैदान, पीट भूमि, मरुद्यान, ज्वारनदमुख, डेल्टा और ज्वारीय फ्लैट, मैंग्रोव, तटीय क्षेत्र, मूंगा चट्टानें और मानव निर्मित स्थल जैसे आर्द्रभूमि आवासों की एक श्रृंखला शामिल है। मछली के तालाब, चावल के खेत, जलाशय और नमक के बर्तन। भारत ने 5 नई रामसर साइटें नामित कीं, जिससे देश में कुल 54 रामसर साइटें हो गईं। रामसर साइटों को 49 से बढ़ाकर 54 रामसर साइटों तक कर दिया गया है।

रामसर स्थलों की सूची में जोड़े गए पांच नए आर्द्रभूमि इस प्रकार हैं:

- तमिलनाडु में कारिकिली पक्षी अभयारण्य
- तमिलनाडु में पल्लीकरनई मार्श रिजर्व वन
- तमिलनाडु में पिचावरम मैंग्रोव
- मध्य प्रदेश में सख्य सागर
- मिजोरम में पाला वेटलैंड

रामसर साइट बनने के लिए मानदंड

आर्द्रभूमियों के रामसर सम्मेलन के अनुसार, अंतर्राष्ट्रीय महत्व की आर्द्रभूमियों की पहचान के लिए नौ मानदंड हैं:

मानदंड का समूह ए: दुर्लभ या अद्वितीय आर्द्रभूमि के अंतर्गत आने वाली साइटें

मानदंड 1: यदि आर्द्रभूमि में उपयुक्त जैव-भौगोलिक क्षेत्र के भीतर दिखाई देने वाले प्राकृतिक या निकट-प्राकृतिक आर्द्रभूमि प्रकार का एक प्रतिनिधि, दुर्लभ या अद्वितीय उदाहरण शामिल है।

नई रामसर साइटों की सूची

मानदंड का समूह बी:

मानदंड 1प्रजातियों और पारिस्थितिक समुदायों पर ध्यान केंद्रित करने वाले मानदंड

मानदंड 2 आर्द्रभूमि में कमजोर, लुप्तप्राय, या गंभीर रूप से लुप्तप्राय प्रजातियाँ या संकटग्रस्त पारिस्थितिक समुदाय शामिल हैं।

मानदंड 3 यदि आर्द्रभूमि पौधों और/या पशु प्रजातियों की आबादी का समर्थन करती है, तो यह किसी विशेष जैव-भौगोलिक क्षेत्र की जैविक विविधता को बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण है।

मानदंड 4 यदि आर्द्रभूमि में पौधों और जानवरों की प्रजातियां उनके जीवन चक्र के महत्वपूर्ण चरण में शामिल हैं, या प्रतिकूल परिस्थितियों के दौरान आश्रय प्रदान करती हैं। विशिष्ट मानदंड जल पक्षियों पर आधारित हैं।

मानदंड 5 यदि यह लगातार 20,000 या अधिक जलपक्षियों का समर्थन करता है।

मानदंड 6 यदि यह जलपक्षी की एक प्रजाति या उपप्रजाति की आबादी में 1% व्यक्तियों को नियमित सहायता प्रदान करता है।

मानदंड 7 आर्द्रभूमि जो स्वदेशी मछली उप-प्रजातियों, प्रजातियों या परिवारों, जीवन-इतिहास चरणों, प्रजातियों की बातचीत और/या आबादी के एक महत्वपूर्ण अनुपात का समर्थन करती है जो आर्द्रभूमि लाभों और/या मूल्यों का प्रतिनिधि है और इस तरह वैश्विक जैविक विविधता में योगदान करती है।

मानदंड 8 एक आर्द्रभूमि को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मछलियों के लिए भोजन, अंडे देने की जगह, नर्सरी और प्रवास मार्ग का एक महत्वपूर्ण और महत्वपूर्ण स्रोत माना जाता है, जिस पर आर्द्रभूमि के भीतर या अन्य जगहों पर मछली का भंडार निर्भर करेगा।

अन्य करों पर आधारित विशिष्ट मानदंड

मानदंड 9: यदि यह आर्द्रभूमि पर निर्भर गैर-एवियन पशु प्रजातियों की एक प्रजाति या उप-प्रजाति की आबादी में 1% व्यक्तियों का समर्थन करता है।

रामसर स्थलों का महत्व

विश्व स्तर पर वेटलैंड प्रबंधन एक चुनौतीपूर्ण कार्य है जिसमें 172 देशों की भागीदारी है। अनुबंध करने वाली पार्टियों के रूप में, वे एकल पारिस्थितिकी तंत्र के लिए समर्पित अंतरराष्ट्रीय संधि के मूल्य को समझते हैं। आर्द्रभूमि की गिरती दर पारिस्थितिकी तंत्र की सुरक्षा के लिए चिंता का कारण है। रामसर साइटें आर्द्रभूमियों को पहचानती हैं जो मानव अस्तित्व में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। वे पौधों और जानवरों की कई प्रजातियों की जैविक विविधता का समर्थन करते हैं जो अपने अस्तित्व के लिए आर्द्रभूमि पर निर्भर हैं, और उनके लिए सबसे अधिक उत्पादक वातावरण बनाते हैं। आर्द्रभूमियाँ मीठे पानी की आपूर्ति, भोजन और निर्माण सामग्री और जैव विविधता से लेकर बाढ़ नियंत्रण, भूजल पुनर्भरण और जलवायु परिवर्तन शमन तक मानवता के लिए लाभ प्रदान करती हैं।

रामसर स्थलों का इतिहास

रामसर कन्वेंशन के तहत रामसर स्थलों को अंतरराष्ट्रीय महत्व के आर्द्रभूमि के रूप में नामित किया गया है। प्रारंभ में, देशों और गैर-सरकारी संगठनों के बीच बातचीत में बहुत समय लगा और परिणाम नहीं निकला। अंततः, आर्द्रभूमियों के नुकसान और क्षरण की बढ़ती चिंताओं और प्रवासी पक्षियों के आवासों पर इसके प्रभाव को देखते हुए, उन्होंने आगे बढ़ने और आर्द्रभूमियों के संरक्षण पर एक समझौता करने का निर्णय लिया। यूनेस्को ने पहला और सबसे पुराना आधुनिक वैश्विक अंतरसरकारी पर्यावरण समझौता - रामसर कन्वेंशन या वेटलैंड्स कन्वेंशन - वर्ष 1971 में स्थापित किया था जो 1975 में अस्तित्व में आया। ■

जीवन हेतु संघर्षरत क्षिप्रा

■ राजेंद्र जोशी

अपने जीवन के लिए संघर्ष कर रही मध्यप्रदेश की 'मोक्षदायिनी' क्षिप्रा नदी के लिए राज्य की नई सरकार ने एक योजना की घोषणा की है। इसके तहत क्षिप्रा के प्रदूषण के लिए घोषित जिम्मेदार कान्ह (खान) नदी को उज्जैन शहर से बाहर ले जाना है,लेकिन जानकारों का कहना है कि इससे उज्जैन शहर में बहने वाली क्षिप्रा तो साफ हो सकती है, लेकिन आगे जाकर कान्ह फिर से क्षिप्रा नदी में मिलकर प्रदूषित करेगी। इंदौर जिले के ग्राम मुण्डलादोस्तदार से निकली क्षिप्रा नदी 195 किमी का सफर तय कर रतलाम जिले में शिपावरा नामक स्थान पर चम्बल नदी में मिल जाती है। इस नदी को मध्यप्रदेश की गंगा भी माना जाता है। स्कंद पुराण के अनुसार इसके किनारे समय बिताने और स्नानादि करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसी नदी के किनारे उज्जैन में हर 12 वर्ष में सिंहस्थ कुम्भ का आयोजन होता है और 12 ज्योतिर्लिंगों में से एक महाकालेश्वर मंदिर यहीं स्थित है। महाकालेश्वर मंदिर में दर्शन हेतु आने वाले श्रद्धालु क्षिप्रा नदी में स्नान अवश्य करते है, विशेषकर तीज-त्यौहारों पर यहां स्नान के लिये बड़ी संख्या में श्रद्धालु आते हैं। लेकिन अब क्षिप्रा पहले जैसी नहीं रही।

नदी के उद्गम स्थल मुंडलादोस्तदार गांव से संगम स्थल उज्जैन तक इन दिनों बूंद भर पानी नहीं है। मुंडला दोस्तदार के निकट सूखे पड़े प्रवाह मार्ग पर कुछ जगह कांक्रीट की पक्की नहर बना दी गई है, ताकि उसमें लिफ्ट कर डाला गया नर्मदा का पानी बहाया जा सके। क्षिप्रा में प्रदूषण का बड़ा कारण कान्ह नदी को बताया जाता है। कान्ह भी कभी नदी रही है लेकिन फिलहाल तो वह लगातार 7 बार सबसे स्वच्छ घोषित शहर इंदौर के सीवरेज और रास्ते में पड़ने वाले औद्योगिक अपशिष्टों की वाहक मात्र है।

साल 2016 के सिंहस्थ कुम्भ के दौरान क्षिप्रा नदी में जल उपलब्धता हेतु 432 करोड़ की नर्मदा-क्षिप्रा लिंक परियोजना का 2014 में शिलान्यास किया गया था। इस योजना के तहत नर्मदा नदी का पानी 2 बार लिफ्ट कर के ग्राम सजवाय लाया गया और नहर के माध्यम से इसे क्षिप्रा गांव में नदी में मिलाया गया। सजवाय गांव से ही एक छोटी पाइप लाइन मुण्डला दोस्तदार ग्राम की ककड़ी-बड़ली पहाड़ी पर स्थित एक क्षिप्रा मंदिर तक पहुंचाई गई है। इस मंदिर के सामने एक छोटा से कुण्ड, जिसे क्षिप्रा का उद्गम स्थल बताया जाता है, को नर्मदा जल से भरा जाता है। 6 जनवरी 2024 को इस प्रतिनिधि ने पाया कि मुण्डला दोस्तदार की ककड़ी-बड़ली पहाड़ी पर क्षिप्रा मंदिर के सामने का उदगमकुंडा

साल 2016 के सिंहस्थ कुम्भ के दौरान क्षिप्रा नदी में जल उपलब्धता हेतु 432 करोड़ की नर्मदा-क्षिप्रा लिंक परियोजना का 2014 में शिलान्यास किया गया था। इस योजना के तहत नर्मदा नदी का पानी 2 बार लिफ्ट कर के ग्राम सजवाय लाया गया और नहर के माध्यम से इसे क्षिप्रा गांव में नदी में मिलाया गया।

सूखा पड़ा था। पहाड़ी के नीचे सरकार ने करोड़ों रुपये खर्च कर वाटर पार्क बनाया है जहां इस समय पानी सड़ा हुआ है और उसमें जलीय खरपतवार पनप रही है। वाटर पार्क में छुट्टी के दिनों में शहरी लोग तफरीह के लिए आते हैं और गन्दगी फैला जाते हैं। क्षिप्रा मंदिर के पुजारी के बेटे रजत शर्मा बताते हैं कि पानी की मोटर खराब हुए एक महीने से अधिक हो गया है। कई बार सम्बंधित अधिकारियों को सूचना दे चुके हैं, लेकिन कोई सुनने वाला नहीं है। उज्जैन शहर के दक्षिण में स्थित त्रिवेणीघाट पर क्षिप्रा नदी में इंदौर से आने वाली प्रदूषित कान्ह नदी मिलती है। कान्ह नदी को क्षिप्रा के प्रदूषण का जिम्मेदार ठहराया जा रहा है। तीज-त्यौहारों के अवसर पर कान्ह नदी को क्षिप्रा में रोकने के लिए त्रिवेणी घाट पर मिट्टी का अस्थाई बांध बनाने की कवायद की जाती है।

नर्मदा के साफ पानी को गंदा होने से बचाने के लिए नरसिंह घाट से आगे के घाटो का प्रदूषित पानी खाली कर दिया जाता है। इसके बाद क्षिप्रा गांव के डेम से नर्मदा का जल छोड़ा जाता, जो 8 से 10 घण्टों में उज्जैन स्थित क्षिप्रा में पहुंचता है स्नान-आचमन के बाद मोटर पंप बंद कर दिए जाते हैं। त्रिवेणी संगम स्थित कान्ह नदी पर बनाया अस्थाई बांध प्रदूषित पानी के ओवरफ्लो होने से कुछ दिनों में टूट जाता है और क्षिप्रा नदी फिर से पहले जैसी प्रदूषित हो जाती है।

क्षिप्रा को कुछ दिनों के लिए साफ दिखाने की यह प्रक्रिया साल भर चलती रहती है जिसे सरकार, साधु-संत, श्रद्धालु और आम नागरिक सभी ने सहज रुप से स्वीकार कर लिया है। 7 जनवरी 2024 को इस प्रतिनिधि ने उज्जैन के रामघाट पर देखा, नहाने वालों की संख्या बहुत कम थी और नदी में गन्दगी साफ नजर आ रही थी। इसी दिन त्रिवेणीघाट पर क्षिप्रानदी में भरा पानी खाली किया गया था।

क्षिप्रा का नदी तल जलीय खरपवार से भरा पड़ा थे और चारों ओर दुर्गंध का सामाज्य था। कान्ह नदी के प्रदूषित पानी को रोकने के लिये डम्परों व जेसीबी की सहायता से पास में ही मिट्टी का अस्थाई बांध बनाया जा रहा था ताकि मकर सक्रांति के दिन स्नान संभव हो सके। क्षिप्रा की तरह इंदौर की कान्ह नदी की सफाई के नाम पर भी सिर्फ पैसा बहाया जा रहा है। विगत 15 सालों में इस नदी पर 1,157 करोड़ रुपये खर्च करने के बावजूद हालात जस के तस बने हुए हैं। केंद्र सरकार की नमामि गंगे योजना से हाल ही में 598 करोड़ रुपये फिर से स्वीकृत किए गए हैं। इस राशि का उपयोग कान्ह नदी को डायवर्ट करने, स्टापडेम बनाने, जल उपचार संयंत्र स्थापित करने में किया जाएगा। बांधों, नदियों और लोगों पर दक्षिण एशिया नेटवर्क (सेंड्रप) के समन्वयक हिमांशु ठक्कर बताते हैं कि एक नदी से पानी लाकर दूसरी में प्रवाहित किया जाना तकनीकी रुप से संभव तो है लेकिन वित्तीय दृष्टि से अत्यंत महँगा होने के कारण भारत जैसे तीसरी दुनिया के गरीब देशों के लिए यह तरीका कारगर नहीं है।

क्षिप्रा का नदी तल जलीय खरपवार से भरा पड़ा थे और चारों ओर दुर्गंध का साम्राज्य था। कान्ह नदी के प्रदूषित पानी को रोकने के लिये डम्परों व जेसीबी की सहायता से पास में ही मिट्टी का अस्थाई बांध बनाया जा रहा था ताकि मकर सक्रांति के दिन स्नान संभव हो सके।

प्रदूषण पर निगरानी रखने वाली संस्था प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की क्षमता पर सवाल खड़ा करते ठक्कर कहते हैं कि भारत में प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड का गठन हुए 50 साल हो गये है। इस बोर्ड की इकाईयां राज्यों में काम करती है। लेकिन इस बोर्ड ने आज तक किसी एक छोटी सी भी जल संरचना या नदी को साफ किया हो करवाया हो ऐसा उदाहरण नहीं मिलता। वह बताते हैं कि यह बोर्ड सरकार के अधीन काम करता है जिसका अपना कोई बुनियादी ढाँचा नहीं है। इसके अपने न तो कोई लक्ष्य निर्धारित हैं और न ही इसकी कोई जवाबदेही है।

इसके क्रियाकलाप में पारदर्शिता भी नहीं है ऐसे में इससे किसी जल संरचना के प्रदूषण मुक्त करने की उम्मीद कैसे कर सकते हैं? वे कहते हैं कि स्वायत्तता देकर ही इससे कोई उम्मीद की जा सकती है। योगमठ उज्जैन के अध्यक्ष पण्डित योगाचार्य जयवर्द्धन भारद्वाज के अनुसार उज्जैन पहुंचने वाले श्रद्धालु अब क्षिप्रा स्नान की बजाय महाकाल मंदिर के दर्शन हेतु आते हैं। उन्हें उम्मीद है कि 2028 के सिंहस्थ के पहले मुख्यमंत्री क्षिप्रा शुद्धिकरण योजना में सफल होंगे क्योंकि वे स्वयं उज्जैन से हैं और क्षिप्रा की दुर्दशा से परिचित हैं। ■

सूख रही हैं हिमाचल की नदियां

■ मधुसूदन सिंह

केंद्रीय जल आयोग के डाटा के अनुसार उत्तर भारत के जलाशयों में पानी के भंडारण को लेकर दिए गए आंकड़ों के अनुसार 18 जनवरी तक हिमाचल, पंजाब और राजस्थान के जलाशयों में पानी की मात्रा उनकी क्षमता के आधे तक पहुंच गई है। हिमाचल प्रदेश के सबसे बड़े जलाशय गोबिंद सागर बांध की 6.229 बिलियन क्यूसिक मीटर (बीसीएम) क्षमता है, जिसमें अभी 3.115 बीसीएम पानी का भंडार है।

हिमाचल प्रदेश में पिछले तीन महीनों से सूखे की स्थिति बनी हुई है। हिमाचल से निकलने वाली उत्तर भारत की कई प्रमुख नदियों सतलुज, ब्यास, यमुना, रावी और चिनाब में पानी का स्तर कम हो गया है। पीने के पानी के स्रोत तक सूखने लगे हैं। कई इलाकों में पानी की आपूर्ति बाधित हो गई है और प्रशासन को पानी की राशनिंग करनी पड़ रही है। मौसम विभाग के अनुसार अभी 24 जनवरी तक बारिश और बर्फबारी न होने की बात कही जा रही है जिससे क्षेत्र के लोगों की चिंताएं और अधिक बढ़ने लगी हैं। पर्यावरण एवं ग्लेशियर विशेषज्ञ और हिमाचल प्रदेश विज्ञान प्रौद्योगिकी एवं पर्यावरण परिषद में प्रधान वैज्ञानिक एसएस रंधावा ने डाउन टू अर्थ को बताया कि सर्दियों के दिनों में दिसंबर और जनवरी माह में पड़ी बर्फ लंबे समय तक जमी रहती है। इससे ग्लेशियर को संजीवनी मिलती है। लंबे समय तक बर्फ होने से नदियों और नालों को पानी मिलता रहता है। लेकिन वर्तमान सीजन में लंबे सूखे का असर गर्मियों के दिनों में पानी की किल्लत पैदा कर सकता है। अभी जो सूखा पड़ा है उसके असर को लेकर स्टडी की जा रही है।

केंद्रीय जल आयोग के डाटा के अनुसार उत्तर भारत के जलाशयों में पानी के भंडारण को लेकर दिए गए आंकड़ों के अनुसार 18 जनवरी तक हिमाचल, पंजाब और राजस्थान के जलाशयों में पानी की मात्रा उनकी क्षमता के आधे तक पहुंच गई है। हिमाचल प्रदेश के सबसे बड़े जलाशय गोबिंद सागर बांध की 6.229 बिलियन क्यूसिक मीटर (बीसीएम) क्षमता है, जिसमें अभी 3.115 बीसीएम पानी का भंडार है। इसके अलावा 6.157 बीसीएम क्षमता वाले पौंग डैम में 3.457 बीसीएम पानी मौजूद है। वहीं पंजाब के थीन बांध जिसकी क्षमता 2.344 बीसीएम है उसमें 18 जनवरी को 0.567 बिलियन क्यूसिक मीटर पानी ही बचा हुआ है। लंबे सूखे को असर सबसे अधिक उंचाई वाले कबाईली क्षेत्रों के साथ शहरी क्षेत्रों में पानी की कमी के रूप में देखने को मिलेगा। वरिष्ठ पत्रकार और पर्यावरर्णीय मामलों की जानकार अर्चना फुल्ल ने डाउन टू अर्थ से कहा कि पिछले कुछ समय में हिमालय की तलहटी में बसे राज्यों में बड़ी तेजी से पर्यावरर्णीय बदलावों को देखा जा रहा है। हिमाचल में भी पर्यावरण में आ रहे बदलावों के चलते बाढ़ और सूखे की स्थिति देखने को मिल रही है। उन्होंने कहा कि इस बार बरसातों में बहुत अधिक बारिश हुई थी और तेज बारिश के दौरान पानी स्रोतों को रिचार्ज करने के बजाए तेज बहाव के कारण बह गया था। इससे स्रोत अच्छे से रिचार्ज नहीं हो सके। अब पिछले तीन माह के सूखे से पानी के स्रोतों खासकर पेयजल स्त्रोतों में पानी की कमी होना शुरू हो गई है। वे बताती हैं कि यदि स्थिति ऐसी ही बनी रहती है तो आने वाले समय में शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में पानी की भारी किल्लत देखने को मिलेगी।

साथ ही इसका असर कृषि और बागवानी क्षेत्र में भी देखने को मिलेगा। विशेषज्ञों का कहना है कि अभी जो लंबे समय से सूखा चल रहा है उसका सबसे अधिक असर अधिक उंचाई वाले क्षेत्रों किन्नौर, लाहौल स्पीति में देखने को मिलेगा। शीत मरुस्थल स्पीति घाटी में कृषि विभाग में खंड तकनीकी प्रबंधक के तौर पर कार्यरत डॉ। सुजाता नेगी ने डाउन टू अर्थ को बताया कि हमारे यहां इस बार बिल्कुल भी बर्फबारी नहीं हुई है। पिछले साल इस समय तक अच्छी बर्फबारी हो चुकी थी। उन्होंने बताया कि हमारे यहां केवल एक ही सीजन में खेती होती है और खेती के लिए लोग पूरी तरह ग्लेशियर और बर्फबारी के ऊपर निर्भर रहते हैं। इस बार बर्फबारी न होने की वजह से गर्मियों के दिनों में लोगों को खेती के लिए पानी के साथ पीने के पानी की भी किल्लत का सामना करना पड़ सकता है। वाटर एक्सपर्ट प्रतीक कुमार ने कहा कि लंबे सूखे के चलते भविष्य में पानी को लेकर आने वाली चुनौतियों को देखते हुए सरकार और ग्रामीण स्तर पर लोगों को अपने स्तर पर तैयारियां शुरू कर देनी चाहिए। हिमाचल वैसे भी पर्यटन स्थल है और शिमला जैसे शहरों में पानी की किल्लत वैसे भी देखी जाती रही है और इस बार जो ये सूखा पड़ा है इसका असर देखने को मिल सकता है इसलिए अभी से ही पानी को बचाने की दिशा में काम शुरू कर देना चाहिए। ■

सरगैसम शैवाल बड़ी चुनौती

■ युगांतर प्रकृति नेटवर्क

वो 1492 का साल था। अटलांटिक महासागर में क्रिस्टोफ़र कोलंबस के समुद्री अभियान के सामने अचानक एक ऐसी मुसीबत आ खड़ी हुई थी जिसकी उन खोजकर्ताओं को अपेक्षा नहीं थी। उनकी नौका के सामने कई मीलों तक घना समुद्री शैवाल फैला हुआ था। नाविकों को चिंता थी कि उनका जहाज़ इसमें फंसकर डूब जाएगा। अब पांच सौ साल बाद लाखों टनों का वही समुद्री शैवाल जिसे सरगैसम कहा जाता है एक बार फिर दुनिया के सामने एक बड़ी चुनौती बनकर आ खड़ा हुआ है। रिकॉर्ड मात्रा में यह समुद्री शैवाल यानि सगैसम कैरेबियाई द्वीपों और अमेरिका में फ़्लोरिडा के तट पर पहुंच रहा है। इससे वहां के निवासियों के स्वास्थ्य और अर्थव्यवस्था को ख़तरा पैदा हो रहा है।

विशाल शैवाल

सरगैसम के बारे में विस्तृत जानकारी के लिए बीबीसी ने बात की चौनमिन हू से जो फ़्लोरिडा यूनिवर्सिटी में समुद्र विज्ञान के प्रोफ़ेसर हैं। वो बीस साल से सरगैसम का अध्ययन कर रहे हैं। वो कहते हैं यह शैवाल काई की तरह होता है जो पानी में पलता है। वो कहते हैं, "यह ज्यादातर सरगैसो समुद्र में पाया जाता है जो उत्तर अटलांटिक महासागर का हिस्सा है। इस शैवाल पर ही सरगैसो समुद्र का नाम भी पड़ा है। सरगैसम के बीज नहीं होते लेकिन छोटी टहनियां होती हैं जो बढ़ती जाती हैं और धीरे धीरे उनकी चादर बनती जाती है जो समुद्र की सतह पर फैल जाती है। समुद्र की सतह पर तैरने वाले सरगैसम की चादर जब टूटती है तो इसका मलबा बिखर कर समुद्री तट तक पहुंच जाता है।" चौनमिन हू कहते हैं कि इस शैवाल के पत्ते काफ़ी बड़े होते हैं जो हल्के पीले या भूरे रंग के होते हैं। मगर वो सरगैसम का अध्ययन कैसे करते हैं? चौनमिन हू ने बताया, "सरगैसम का रंग समुद्र के पानी के रंग से बिल्कुल अलग होता है। और अतंरिक्ष में पृथ्वी के गिर्द चक्कर लगाने वाले सैटेलाइट के ज़रिए हम पूरे अटलांटिक महासागर पर नज़र रखते हैं। हर दिन अटलांटिक महासागर की तस्वीरें ली जाती हैं जिससे हम वहां मौजूद सरगैसम पर नज़र रख सकते हैं। अगर वहां सरगैसम बहुत छोटी मात्रा में हो तब भी उसका पता लग जाता है। हम टेक्नोलॉजी के ज़रिए पता लगा सकते हैं कि किस जगह पर कितना सरगैसम मौजूद है। यह डाटा इकठ्ठा करके हम इसका प्रति माह औसत निकाल लेते हैं।" 2011 में सरगैसम की मात्रा में भारी वृद्धि देखी गई जिसे ग्रेट सरगैसम ब्लूम कहा गया। चौनमिन हू ने कहा, "हमने पाया कि पश्चिमी अफ़्रीका से मैक्सिको तक सरगैसम की पट्टी फैलती है। 2011 से हर साल गर्मी के मौसम में यह हो रहा है। या तो सरगैसम की यह पट्टी अखंड होती है या कुछ जगहों पर सरगैसम के विशाल चादर के टुकड़े बनते दिखते हैं। यह नई बात है क्योंकि इससे पहले सरगैसम केवल सरगैसो समुद्र में पाया जाता था। अब वो अटलांटिक के उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में पाया जाने लगा है।" 2011 के बाद से सरगैसम शैवाल नई जगहों पर क्यों पनपने लगा है, इसका पता अभी नहीं लग पाया है। चौनमिन हू के अनुसार इसकी एक वजह यह है कि 2010 के दौरान मौसम में कुछ बदलाव आए थे। पश्चिम से पूर्व की ओर तेज़ हवा और समुद्री जल का तेज़ करंट बह रहा था। इस तेज़ हवा और पानी के तेज़ बहाव ने सरगैसो समुद्र के सरगैसम को अटलांटिक के उष्णकटिबंधीय क्षेत्र की ओर ठेल दिया और 2011 में इस शैवाल को पर्याप्त मात्र में सूरज की गर्मी और पोषण मिला जिससे वो तेज़ी से फलफूलने लगा। संभवतः यह एक वजह हो सकती है। चौनमिन हू और उनकी टीम ने सरगैसम के अध्ययन में पाया कि उसमें आर्सिनिक धातु के अंश मौजूद थे। चौनमिन हू ने बताया, "हमारे पास सरगैसम के पर्याप्त सैंपल नहीं हैं जिसके आधार पर निश्चित तौर पर कुछ कहा जा सके लेकिन तट के नज़दीक सरगैसम में प्रदूषण के अधिक तत्व थे जबकि बीच समुद्र में वो कुछ कम थे। मगर कई जगह सरगैसम में आर्सिनिक की मात्रा सुरक्षित स्तर से अधिक थी। पिछले पांच सालों में सरगैसम की मात्रा पहले से कहीं अधिक रही है। अगले साल यह और बढ़ेगी या नहीं कहना मुश्किल है। लेकिन अनुमान है कि आने वाले पांच या दस सालों में इसमें वृद्धि होगी।"

शैवाल के कुछ फ़ायदे

दी सरगैसो सी कमीशन के कार्यकारी सचिव डेविड फ़्रीस्टोन का मानना है कि सरगैसम समुद्री जैव विविधता के लिए बेहद फ़ायदेमंद है। "सरगैसो सागर कहां स्थित है? यह अटलांटिक में बरमूडा द्वीपों के गिर्द फैला हुआ है। लोग समझते हैं कि बरमूडा कैरेबियाई द्वीप समूह का हिस्सा है, मगर वह दरअसल अमेरिका के नॉर्थ कैरोलाइना के स्तर पर उत्तर में स्थित है। हम इसे 'बिना सीमा वाला सागर' भी कहते हैं। बरमूडा के इर्द गिर्द पानी लगभग चार हज़ार मीटर गहरा है। अब चूंकि सरगैसो शैवाल पानी की सतह पर तैरते हैं तो उसके नीचे कई किस्म कि छोटी बड़ी मछलियां रहती हैं, कछुए और अन्य समुद्री जीव पलते हैं। सरगैसो के समुद्री कछुए लुप्तप्राय करार दिए जा चुके हैं। वह सरगैसो की वजह से बचे हुए हैं। यह पूरा तंत्र सरगैसम के कारण फलता फूलता है।" सरगैसम को मानव गतिविधियों से ख़तरा पैदा हो रहा है। डेविड फ़्रीस्टोन कहते हैं कि सरगैसो सागर के एक तरफ़ यूरोप है और दूसरी तरफ़ अमेरिका है। यह एक प्रमुख जलमार्ग है। नौकाओं की वजह से सरगैसो सागर में सरगैसम की विशाल चादरें टूट गई हैं। नौकाओं की आवाजाही का उन पर बुरा प्रभाव पड़ा है। सरगैसम को दूसरा बड़ा नुकसान मछली उद्योग से हुआ है। डेविड फ़्रीस्टोन ने कहा, "2010 में जब हमने यह प्रोजेक्ट शुरू किया तब इस क्षेत्र में मछली पकड़ने की गतिविधि काफ़ी कम थी। पिछले पांच सालों में इसमें बड़ी वृद्धि हुई है। कई समुद्री जीव स्क्विड पर पलते हैं। पूर्व में चीन ने सरगैसो सागर में स्क्विड पकड़ने के अपने उद्योग को तीन गुना बढ़ा दिया है। इसलिए सरगैसो का इको सिस्टम बुरी तरह प्रभावित हो रहा है।" यह तो बात हुई बीच समुद्र के पानी की स्थिति की। मगर जब सरगैसम तटों पर पहुंचता है तो स्थिति कुछ और ही बन जाती है।

शैवाल से नुक़सान

सरगैसम के समुद्री तट पर प्रभाव के बारे में हमने बात की डॉक्टर मैरी लुई फ़ेलिक्स से जो एक मरीन बायलॉजिस्ट यानि समुद्री जीव वैज्ञानिक हैं और सेंट लूशिया के सर आर्थर लुईस कम्यूनिटी कॉलेज में पर्यावरण विज्ञान की प्रोफ़ेसर हैं। उन्होंने कहा कि वो बचपन से ही सेंट लूशिया के तट पर सरगैसम देखती आई हैं मगर अब इसका स्तर बढ़ रहा है। वो कहती हैं, "यह एक अलग किस्म की प्रजाती है। सेंट लूशिया में सरगैसम की समस्या 12-13 सालों से रही है। लेकिन जून से नवंबर महीने के बीच सरगैसम की मात्रा बहुत बढ़ जाती है।" डॉक्टर फ़ेलिक्स का मानना है कि 2023 में स्थिति इतनी ख़राब नहीं हुई जितनी कि दो-तीन साल पहले थी। दो साल पहले समुद्री तट से तीस फ़ीट दूर तक सरगैसम की घनी परत फैल गई थी। सरगैसम जब

रोबोटिक प्लैटफार्म की मदद से हम प्रतिदिन सौ टन सरगैसम समुद्र के तल में डाल सकते हैं। हमें लगता है कि इस समस्या का हल निकाला जा सकता है। हमने इस दिशा में कुछ काम किया है और समझने की कोशिश की है कि कितनी मात्रा में सरगैसम को समुद्र में कितनी गहराई में डाला जा सकता है ताकि गैस मॉड्यूल फटे नहीं।

सड़ने लगता है तो उससे हाइड्रोजन सल्फ़ाइड गैस का उत्सर्जन होता है जिसकी दुर्गंध सड़े हुए अंडों जैसी होती है। इतना ही नहीं इससे आंखों में जलन हो सकती है, सिर चकराने लगता है, सिरदर्द होता है, सांस लेने में दिक्कत भी हो सकती है या पेट भी ख़राब हो सकता है। इस सरगैसम में छोटी मछलियां फंस कर सड़ने लगती हैं। डॉक्टर मैरी लुई फ़ेलिक्स ने बताया, "तट पर इतना सरगैसम इकठ्ठा हो जाता है कि उसकी कई फ़ीट लंबी घनी दीवार बन जाती है। कई छोटी मछलियां और दूसरे छोटे समुद्री जीव इसमें फंस कर सड़ने लगते हैं। आप कल्पना कर सकते हैं कि सरगैसम की सड़ांध इससे कितनी तीव्र हो जाती है। इससे तट के आसपास जीवन बुरी तरह प्रभावित होता है।" हाइड्रोजन सल्फ़ाइड हवा में घुल कर पानी की छोटी बूंदों में परिवर्तित हो जाता है जिससे घरों में इस्तेमाल होने वाले कई महंगे उपकरणों में ज़ंग लगने लगता है या वो ख़राब हो जाते हैं। डॉक्टर मैरी लुई फ़ेलिक्स ने कहा, "तीन साल पहले मैं एक सर्वेक्षण कर रही था तब कई लोगों ने कहा कि उनके फ़्रिज, टीवी, कूलर और म्यूज़िक सिस्टम जैसे इलेक्ट्रिक उपकरण ख़राब हो रहे हैं। यहां रहने वाले अधिकांश लोग ग़रीब हैं। उनके लिए यह बड़ा आर्थिक नुकसान है। मछुआरे समुद्र में नहीं जा पाते क्योंकि उनकी नौकाओं के इंजन ख़राब हो जाते हैं। हमारी अर्थव्यवस्था पर्यटन पर निर्भर है। यहां पर यॉट और लग्ज़री नौकाएं आती हैं। यहां के अधिकांश होटल समुद्री तट पर बने हैं। सरगैसम से आने वाली दुर्गंध की वजह से लोग होटल में नहीं रहना चाहते। इससे पर्यटन पर बुरा असर पड़ा है।" पर्यटन के प्रभावित होने से उससे जुड़ा रोज़गार भी प्रभावित हुआ है। सरगैसम को हटाने के लिए तीन काम किए जा सकते हैं जो सरगैसम की मात्रा पर निर्भर करते हैं। अगर सरगैसम छोटी मात्रा में इकठ्ठा हो रहा है तो उसे वहीं छोड़ा जा सकता है। लेकिन अगर बड़ी मात्रा में

सरगैसम तट पर जमा हो रहा है तो उसे हटाने के लिए ट्रकों का इस्तेमाल करना पड़ेगा जिसके लिए हज़ारों डॉलर खर्च करने पड़ेंगे और आम लोगों को भी इसकी सफ़ाई में शामिल होना पड़ेगा। सरकार के लिए यह खर्च उठाना मुश्किल है। सरगैसम में काफ़ी नमक होता है, इसलिए उसे ज़मीन पर नहीं डाला जा सकता क्योंकि इससे खेती की ज़मीन की क्वालिटी ख़राब होगी। कैरेबियन क्षेत्र में फ़्रांस के कई द्वीप हैं इसलिए वो सरगैसम की समस्या से निपटने के लिए शोधकार्य में पैसे लगा रहा है। अमेरिका में भी इस विषय पर काफ़ी शोधकार्य चल रहा है। मैरी लुई फ़ेलिक्स का कहना है कि यह जानने के लिए भी काफ़ी रीसर्च चल रही है कि सरगैसम का क्या इस्तेमाल किया जा सकता है। क्या इसे खाद या बायोगैस के बनाने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है? क्या इसे साफ़ करके पशुओं के आहार के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है? उन्होंने कहा कि यह क्षेत्रीय समस्या है और कई शोध संस्थान और विश्वविद्यालय इस पर शोध कर रहे हैं। यह तो बात हुई सरगैसम के तट पर पहुंचने पर उससे निपटने की। लेकिन क्या इसे वहां पहुंचने से रोका जा सकता है?

सागर में एक बूंद

कोलंबिया यूनिवर्सिटी के लेमोंट डोहोर्टी अर्थ ऑब्ज़रवेटरी के साथ काम करने वाले समुद्र जीव वैज्ञानिक प्रोफ़ेसर अजीत सुब्रमण्यम कहते हैं कि सरगैसम को तटों तक पहुंचने से रोकने की ज़रूरत है और रोबोटिक प्लैटफ़ॉर्म की सहायता से पानी पर तैरते सरगैसम को तट पर पहुंचने से पहले ही जमा कर के समुद्र के तल में डाला जा सकता है। वो कहते हैं, "रोबोटिक प्लैटफार्म की मदद से हम प्रतिदिन सौ टन सरगैसम समुद्र के तल में डाल सकते हैं। हमें लगता है कि इस समस्या का हल निकाला जा सकता है। हमने इस दिशा में कुछ काम किया है और समझने की कोशिश की है कि कितनी मात्रा में सरगैसम को समुद्र में कितनी गहराई में डाला जा सकता है ताकि गैस मॉड्यूल फटे नहीं।" इसके गैस मॉड्यूल के फटने से जो गैस निकलती है उसके बल पर सरगैसम पानी पर तैरता रहता है। अगर गैस मॉड्यूल के फटे बिना सरगैसम को समुद्र की गहराई में ले जाया जाए तो पानी का दबाव सरगैसम को नीचे धकेल सकता है। ऐसा करने के लिए सरगैसम को अच्छी तरह समझने की ज़रूरत है। प्रोफ़ेसर अजीत सुब्रमण्यम ने कहा, "हम रीसर्च के ज़रिए यह समझने की कोशिश कर रहे हैं कि अगर सरगैसम को समुद्र तल में दो हज़ार मीटर की गहराई में डाला जाए तो उसका क्या होता है? वहां उसे सड़ कर विघटित होने में कितना समय लगता है, वो कितनी ऑक्सीजन सोंखता है और समुद्र तल के पर्यावरण पर इसका क्या असर होता है। सरगैसम से

"हमने पाया कि पश्चिमी अफ़्रीका से मैक्सिको तक सरगैसम की पट्टी फैलती है। 2011 से हर साल गर्मी के मौसम में यह हो रहा है। या तो सरगैसम की यह पट्टी अखंड होती है या कुछ जगहों पर सरगैसम के विशाल चादर के टुकड़े बनते दिखते हैं। यह नई बात है क्योंकि इससे पहले सरगैसम केवल सरगैसो समुद्र में पाया जाता था। अब वो अटलांटिक के उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में पाया जाने लगा है।

-चौनमिन हू

जो ज़हरीली गैस निकलेगी उसका क्या असर होगा? मुझे लगता है समुद्र तल में पानी के करंट की वजह से सरगैसम से निकलने वाले ज़हरीले तत्व डायल्यूट हो जाएंगे यानि उनकी तीव्रता कम हो जाएगी। मुझे लगता है कि हर हालत में समुद्र तट पर बड़ी मात्रा में सरगैसम के इकठ्ठा की तुलना में यह कम नुकसानदेह होगा। लेकिन ऐसे कई सवाल हैं जिनके हमारे पास अभी ठोस जवाब नहीं हैं।" चौनमिन हू ने पता लगाया था कि अटलांटिक के उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र में सरगैसम में लगभग साढ़े तीस लाख टन कार्बन मौजूद है। क्या इसे पानी की सतह से हटा कर समुद्र की गहराई में डालने से पर्यावरण पर कोई असर पड़ेगा? वैज्ञानिकों के सामने सवाल यह भी है कि क्या यह पर्यावरण में कार्बन उत्सर्जन कम करने में मददगार साबित हो सकता है? प्रोफ़ेसर अजीत सुब्रमण्यम ने कहा, "यह ऐसे अहम सवाल हैं जिनका जवाब हम ढूंढना चाहते हैं। हमें समझना पड़ेगा कि समुद्र तल में सौ या दो सौ साल तक सरगैसम के पड़े रहने से क्या असर पड़ेगा। कितने समय में उससे कार्बन का उत्सर्जन होगा। हमें इसे गंभीरता से समझना होगा। ऐसा भी नहीं है कि समुद्र में एक ही जगह पर हम दस लाख टन सरगैसम डाल दें। जिन जगहों पर यह पाया जाता है, जैसे बारबडोस, एंटिगा और पोर्टे रिको, वहां से उसे इकठ्ठा कर के छोटे हिस्से में अलग जगहों पर डालना होगा। ज़ाहिर है समुद्र तल पर धीरे धीरे इसका असर होगा। मगर हम यह तो जानते हैं कि समुद्र तट पर इसका कितना बड़ा असर पड़ रहा है। हमें दोनों परिणामों को देख कर चुनना पड़ेगा कि नुकसान किस बात से कम होगा।" तो अब लौटते हैं अपने मुख्य प्रश्न की ओर कि समुद्री शैवाल-सरगैसम का मसला क्या है? पानी में तैरते सरगैसम पर कई समुद्री जीव पलते हैं लेकिन मछली उद्योग और नौकाओं की आवाजाही से उसे ख़तरा पैदा हो रहा है। जिन देशों के तटों पर सैंकड़ों टन सरगैसम बह कर जमा हो जाता है वहां के समुदायों के स्वास्थ्य ही नहीं बल्कि अर्थव्यवस्था पर इसका बुरा असर पड़ रहा है। सरगैसम की समस्या के हल के लिए कई वैज्ञानिक और संस्थाएं शोधकार्य कर रही हैं। मगर एक बात स्पष्ट है कि स्थिति विकट होती जा रही है और जल्द ही इसके समाधान की ज़रूरत है। ■

पक्षियों का प्रजनन काल

■ युगांतर प्रकृति नेटवर्क

पक्षियों का प्रजनन काल उनके प्रजनन या अंडे देने की क्षमता के साथ जुड़ा होता है। पक्षियां विभिन्न प्रजातियों में अलग-अलग होती हैं, और उनका प्रजनन काल भी इस पर निर्भर करता है। बहुत से पक्षी अपना प्रजनन अंडे देकर करते हैं, और इसके लिए विभिन्न समयांतराल में इसका आयोजन करते हैं। इसमें साल के विभिन्न मौसमों और आबादी की वृद्धि के आधार पर भिन्नता हो सकती है। कुछ पक्षी हरित वनों में या अन्य वन्यजन्तु आवासों में सीधे अंडे देने के लिए अंडाच्छादन का आयोजन करते हैं। इसके लिए वे एक योजना बनाते हैं और यह कारगर तरीके से अंडे देते हैं। सामान्यत: पक्षियों का प्रजनन काल मौसम, वन्यजन्तु क्षेत्र, और प्रजाति के आधार पर भिन्न हो सकता, इसलिए सभी पक्षी एक समय में या एक ही मौसम में प्रजनन नहीं करते हैं।

फरवरी में कौन से पक्षी प्रजनन करते हैं

फरवरी में कई प्रजातियों के पक्षी अपना प्रजनन कार्य करते हैं। इस महीने में बहुत से पक्षी अपने प्रजनन सीज़न की शुरुआत कर सकते हैं, जो उनके प्रजनन योजनाओं को में लेते हैं। यह प्रजनन विभिन्न कारणों पर निर्भर कर सकता है जैसे कि मौसम, भोजन की उपलब्धता, और समुद्री प्रजातियों के लिए अपने आवास क्षेत्र में अधिक सुरक्षा। कुछ पक्षी शीतकालीन सीज़न के बाद फरवरी में प्रजनन करते हैं ताकि उनके छोटे पंखों वाले बच्चे उस मौसम के बाद पूरी तरह से विकसित हो सकें और उन्हें संजीवनी भोजन की उपलब्धता मिल सके। यह समझना महत्वपूर्ण है कि फरवरी में भी विभिन्न प्रजातियों के पक्षियों का प्रजनन विभिन्न कारणों पर निर्भर कर सकता है, और यह एक सामान्य नियम नहीं है।

भारत में साइबेरियन पक्षी कब आते हैं

साइबेरियन पक्षी वसंत और शीतकालीन मौसमों के दौरान भारत आते हैं। इन पक्षियों का प्रमुख आवास स्थान साइबेरिया है और वे शीतकाल के दौरान यात्रा करके भारत आते हैं, जो उनके आवासीय क्षेत्रों की शीतकालीन अवधि के दौरान साहसिक प्रवास होती है। साइबेरियन पक्षियां भारत में आने वाले क्षेत्रों में विभिन्न अनुकूलन स्थानों पर ठहर सकती हैं, जैसे कि बन, झीलें, नदी किनारे, और खुले मैदान। ये पक्षी मुख्य रूप से भूखे नहीं रहने और नए भोजन के लिए यात्रा करने के लिए आते हैं। इन पक्षियों की यात्रा का समय वसंत और शीतकालीन मौसमों के आस-पास होता है, जिसका अर्थ है कि ये आते हैं बसंत और सर्दी के मौसम के दौरान। साइबेरियन पक्षियों का भारत आना एक रोमांटिक और आश्चर्यजनक प्रक्रिया है। यह विशेष रूप से बर्ड वॉचर्स के लिए एक महत्वपूर्ण समय है, जब वे इन पक्षियों की दृष्टि का आनंद लेते हैं और उनका अध्ययन करते हैं। इस प्रवास के दौरान, इन पक्षियों की संख्या अनेक भौतिक और उर्वरकीय परिवर्तनों के कारण कम हो सकती है। इसके लिए कई नैतिक और संरक्षणीय उपाय अपनाए जा रहे हैं ताकि इन प्रजातियों की सुरक्षा हो सके और उनकी संरक्षण में मदद की जा सके।

यह प्रवास नहीं सिर्फ वन्यजन्तु बचाव की दिशा में महत्वपूर्ण है, बल्कि इससे भारतीय प्रदेशों में भी प्रजातियों के बीच अंतराष्ट्रीय सहयोग और समर्थन का एक अच्छा उदाहरण साझा होता है। साइबेरियन पक्षियों का भारत आना एक प्राकृतिक समीकरण का हिस्सा भी है, क्योंकि यह देखा गया है कि इन पक्षियों की आगमन ने विभिन्न भूभागों की वन्यजीव निरीक्षण को प्राथमिकता दी है। यह भारत में वन्यजन्तु संरक्षण के क्षेत्र में साझेदारी को मजबूती प्रदान करता है और उनकी सुरक्षा के लिए सामूहिक प्रयासों की आवश्यकता को प्रोत्साहित करता है। इस समय के दौरान, बग्घों, सांभरों, सारसों, और अन्य उड़ने वाले पक्षियों की दृष्टि को भी बढ़ाता है, और वन्यजीव संरक्षण के क्षेत्र में जागरूकता बढ़ाता है। इससे भारतीय लोगों को अपने प्राकृतिक समर्पण का अनुभव होता है और वे वन्यजीव संरक्षण की महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। यह प्रवास एक अद्भुत प्राकृतिक दृश्य का भी माध्यम है, क्योंकि इन पक्षियों के आगमन का समय अक्सर उन्हें विभिन्न भूभागों में देखने

का एक शानदार अवसर प्रदान करता है। यह वन्यजीव संरक्षण, प्राकृतिक सौंदर्य, और वन्यजीवों के संरक्षण के प्रति जागरूकता को बढ़ावा देता है।

झारखंड में कौन से साइबेरियन पक्षी आते हैं

झारखंड राज्य भारत में स्थित है और यह वन्यजीव संरक्षण और प्राकृतिक जीव संरक्षण के लिए एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। झारखंड में कई प्रजातियों के पक्षी पाए जाते हैं, लेकिन साइबेरियन पक्षियों का आगमन एक विशेष तारीख सीमित हो सकता है और यह बर्फीले क्षेत्रों को पसंद कर सकते हैं। साइबेरियन पक्षियों की कई प्रजातियां, जैसे कि साइबेरियन क्रेन, साइबेरियन रूबीथ्रोट विभिन्न भूभागों में देखी जा सकती हैं। इन पक्षियों का आगमन अक्सर शीतकालीन और ठंडी जगहों में होता है, क्योंकि ये पक्षी अपने आवासीय क्षेत्रों की ठंडक पसंद करते हैं। झारखंड के विभिन्न बियाबानी क्षेत्रों और झीलों में ये पक्षी देखे जा सकते हैं, जहां उन्हें आवास के लिए उपयुक्त माहौल मिलता है। यहां के नेचुअल रिजर्व्स और वन्यजीव अभ्यारण्यों में इन पक्षियों की सुरक्षा के लिए कई संरक्षण कार्यक्रम भी चलाए जा रहे हैं।

साइबेरियन लालसर झारखंड में कब आते हैं

साइबेरियन लालसर एक छोटी और सुंदर प्रजाति का पक्षी है जो अपनी लाल गले और सियाह पेट के रंग के लिए पहचाना जाता है। यह एक उत्तरी हेमिस्फियर में पाया जाता है और विशेष रूप से साइबेरिया से उत्पन्न होता है। साइबेरियन लालसर भारत में विभिन्न स्थानों पर देखा जा सकता है, जो भारत के उत्तरी राज्यों में समाहित हैं, जैसे कि झारखंड। इस पक्षी का आगमन शीतकालीन मौसम में होता है, जो अक्टूबर से मार्च के बीच होता है। यह एक माइग्रेटरी पक्षी है जो अपने आवासीय क्षेत्रों में सुरक्षित मौसम की तलाश करता है। झारखंड में, इस पक्षी को विभिन्न बागवान, झीलें, और वन्यजीव संरक्षण क्षेत्रों में देखा जा सकता है, जहां वह अपने आवासीय क्षेत्रों की खोज करता है और अपने प्रजनन क्षमता को बढ़ाने के लिए आता है। झारखंड में साइबेरियन लालसर के आगमन का समय मुख्यतः शीतकालीन और सर्दी के महीनों में होता है, जब यह नॉर्दन हेमिस्फियर के उच्च अक्षांशों से आकर इस क्षेत्र में आता है। यह पक्षी अपनी मुखरूपता और विशेष रंगों के लिए प्रसिद्ध है और इसे देखना वन्यजीव संरक्षण क्षेत्रों और पक्षी दर्शन केंद्रों में पॉपुलर है। इस प्रजाति के पक्षियों का आगमन स्थानीय पक्षी दर्शन केंद्रों और वन्यजीव संरक्षण क्षेत्रों में बढ़ती है, जो इस प्रजाति के अनुसंधान और संरक्षण के लिए महत्वपूर्ण हैं। झारखंड में कई वन्यजीव अभ्यारण्य और बागवान हैं जहां लोग इन प्रजातियों को देख सकते हैं और इनके संरक्षण में सहायक बन सकते हैं। प्राकृतिक सुंदरता के साथ-साथ वन्यजीव संरक्षण में लोगों की भागीदारी को बढ़ावा देने के लिए ऐसे पक्षी दर्शन केंद्र एक महत्वपूर्ण साधन हैं।

झारखंड में लालसर का शिकार

लालसर या रूबीथ्रोट का शिकार अवैध और गैरकानूनी हो सकता है, क्योंकि यह एक प्राकृतिक जीव संरक्षित प्रजाति है। भारत में, वन्यजीव संरक्षण अधिनियम, 1972 के तहत, ऐसी प्रजातियों का शिकार, बाजार में बेचना या उनका व्यापार करना कानूनी दंडनीय है। इसमें लालसर भी शामिल है, जिसे भारत में बचाव के लिए विभिन्न संरक्षणीय क्षेत्रों में सूचीबद्ध किया गया है। लालसर की सुरक्षा के लिए विभिन्न कार्रवाईयाँ की जा रही हैं, जैसे कि उनके आवासीय क्षेत्रों की संरक्षण, जैव उद्यानों और वन्यजीव अभ्यारण्यों की स्थापना, और जनसंरक्षण जागरूकता कार्यक्रमों की प्रोत्साहना। इस अवैध शिकार और वन्यजीव संरक्षण के खिलाफ कानूनी कदमों के अलावा, लालसर का सही ढंग से संरक्षण किया जा रहा है। झारखंड राज्य में वन्यजीव संरक्षण क्षेत्रों और अभ्यारण्यों में लालसर के प्रजातियों का संरक्षण किया जा रहा है। वन्यजीव संरक्षण क्षेत्रों और अभ्यारण्यों में, वन्यजीव संरक्षण कर्मचारी और अधिकारी नियमों का पालन करते हैं और इन प्रजातियों की रक्षा के लिए कार्रवाई करते हैं। इसमें उनके आवास क्षेत्रों की सुरक्षा, उनके जीवनशैली का अध्ययन, और लोगों को जागरूक करने के लिए शिकार करने की कठिनाई को कम करने के लिए विभिन्न कदम शामिल हैं। स्थानीय जनसंग्रहण और शिकार करने की प्रवृत्तियों को कम करने, वन्यजीव संरक्षण के लिए समर्थन मिलने और लोगों को संरक्षण की महत्वपूर्णता के प्रति जागरूक करने में सहायक नेतृत्व प्रदान करने के लिए स्थानीय समुदायों के साथ मिलकर काम किया जा रहा है।

झारखंड में लालसर कहां आते हैं

लालसर झारखंड में कोडरमा, पलामू टाइगर रिजर्व, रागढ़ताल, नेतरहाट आदि में प्रवास करते हैं। यह छोटा पक्षी बहुत रंगीन होता है और उसका आवास सामान्यतः उच्च बूटी और घास के मैदानों, बाग-बगिचों, झीलों और वन्यजीव संरक्षण क्षेत्रों में मिलता है। झारखंड में लालसर के आवासीय स्थानों में इस पक्षी की ज़्यादा देखभाल की जा रही है ताकि इसकी संख्या में सुरक्षिति बनी रहे। यह वन्यजीव संरक्षण क्षेत्रों और वन्यजीव अभ्यारण्यों में देखा जा सकता है, जैसे कि पलामू वन्यजीव संरक्षण क्षेत्र, दलमा वन्यजीव संरक्षण क्षेत्र, हुगुली वन्यजीव संरक्षण क्षेत्र, और अन्य स्थान। लालसर की दृष्टिकोण से समृद्धि और इसके प्रजनन क्षमता को बढ़ाने के लिए संरक्षण के प्रयासों के बावजूद, इसका प्रजनन शीतकालीन मौसम में होता है, जो इसे अक्टूबर से मार्च के बीच देखने का समय देता है। झारखंड में लालसर के स्थानीय स्तर पर देखा जा सकता है, जैसे कि जंगलों, बाग-बगिचों, और झीलों के आसपास। यह पक्षी अपने आवासीय क्षेत्रों में रहने के लिए विभिन्न प्रकार की आपातकालीन और सुरक्षित जगहों की तलाश करता है। इसकी आवासीय प्रदृष्टि के क्षेत्रों में स्थानीय वन्यजीव संरक्षण कर्मचारियों द्वारा इसका संरक्षण किया जाता है ताकि इसकी स्थिति सुरक्षित रहे। लालसर के प्रजनन और उसके आवासीय क्षेत्रों की सुरक्षा के लिए भारत सरकार और स्थानीय प्रशासन विभिन्न कदम उठा रहे हैं, जिनमें वन्यजीव संरक्षण क्षेत्रों की स्थापना, संरक्षण के निरीक्षण और निगरानी, और सामुदायिक जागरूकता शामिल है। इसके अलावा, लोगों को इस प्रजाति के संरक्षण में शामिल करने के लिए जागरूक किया जाता है ताकि यह अनुपयोगी शिकार और बर्बादी से बचा जा सके। ■

किलर व्हेल
बेहद ख़तरनाक मछली

2023 में दक्षिण पश्चिमी यूरोप में जहां अटलांटिक महासागर और भूमध्यसागर का संगम होता है, वहां कुछ अजीब घटनाएं देखी गईं।वहां समुद्र में ओर्का यानि किलर व्हेल्स ने छोटी नौकाओं पर हमले किए और जब नौकाओं की पतवार टूट कर पानी में गिर गई तो इन व्हेल्स ने पतवार के टुकड़ों को पकड़ कर नष्ट कर दिया। और इसके बाद वे वहां से निकल गईं। नौकाओं में सवार लोग हक्का-बक्का देखते रह गए। कुछ हमले चंद मिनटों तक चले तो कुछ घंटों तक जारी रहे। इससे नांव के मालिकों को हज़ारों डॉलर्स का नुकसान हुआ। इन विशाल मछलियों का यह व्यवहार कई लोगों को अजीब लग रहा है।

■ युगांतर प्रकृति नेटवर्क

व्यवहार में आया अचानक परिवर्तन

ज़ूओलॉजिस्ट यानि प्राणी विज्ञानी और वाइल्ड लाइफ़ टूर गाइड बिल हीनी के अनुसार पिछले तीन सालों में ऐसी पांच सौ वारदातें हुई हैं, जब ओर्काओं ने नौकाओं को टक्कर मारकर पतवारों को ध्वस्त किया है। उन्होंने बताया कि इन पांच सौ वारदातों में दर्जनों नौकाएं या तो क्षतिग्रस्त हो गईं या डूब गईं। ये सभी हमले आइबेरियाई खाड़ी में हुए हैं। अनुमान है कि इस क्षेत्र में 35 ओर्का हैं। इनमें से 15 ओर्काओं को नौकाओं पर हमला करते हुए देखा गया है। इन पंद्रह ओर्काओं यानि किलर व्हेल में से एक को इन हमलों के लिए दूसरों को उकसाते हुए देखा गया है। बिल हीनी ने बताया, ज़्यादातर हमलों में इस गुट की मेट्रिआर्क यानि प्रमुख मादा को हमलों का नेतृत्व करते देखा गया है। इस ओर्का का नाम व्हाइट ग्लैडिस है। हाथियों की तरह ओर्का के गुट का नेतृत्व सबसे प्रबल मादा करती है, जो कई बार इस गुट के सदस्यों की मां या दादी होती है। इन ओर्काओं को वैज्ञानिक रीसर्च के लिए नंबरों पर आधारित नाम दिए जाते हैं। लेकिन नंबर याद रखना मुश्किल होता है, इसलिए इन्हें दूसरे नाम भी दिए जाते हैं। जैसे कि व्हाइट ग्लैडिस, ब्लैक ग्लैडिस या थंडर स्टॉर्म। मगर यह किस आधार पर कहा जा रहा है कि नौकाओं पर हमले में व्हाइट ग्लैडिस शामिल है? बिल हीनी कहते हैं कि डॉल्फ़िन मछलियों की तरह ओर्का की पीठ पर भी सफ़ेद पट्टियां या पैटर्न होते हैं। उन पैटर्न और उनके शरीर पर घावों के निशानों या पंखों के आकार के आधार पर उनकी पहचान कर ली जाती है। वो कहते हैं कि व्हाइट ग्लैडिस के हमलों में शामिल होने के कई सुबूत रिकार्ड किए गए हैं। किसी को भी निश्चित तौर पर तो पता नहीं है कि ओर्का नौकाओं के पतवार क्यों तोड़ रही हैं लेकिन वैज्ञानिक कुछ कयास ज़रूर लगा रहे हैं। बिल हीनी ने बताया, "वैज्ञानिकों का कयास है कि संभवतः कभी ग्लैडिस नौकाओं की वजह से आहत हुई होंगी। हो सकता है वो किसी नौका से टकरा गई होंगी या मछली पकड़ने के लिए इस्तेमाल होने वाले हुक या जाल में फंस गई होंगी। इस वजह से नौकाओं को लेकर उसके दिमाग में एक नकारात्मक भावना घर कर गई होगी, इसलिए वो उन पर हमला कर देती हैं। ऐसा ज़रूरी नहीं है कि वो गुट की दूसरी ओर्काओं को भी हमले के लिए उकसाती हों। लेकिन वह इस गुट की प्रमुख है और हो सकता है उसे हमला करता देख दूसरी ओर्काएं भी उसकी नकल करने लग जाती हों।"

जहां तक नकल करने की बात है, इसकी मिसाल भी मिलती है। बिल हीनी कहते हैं कि एक समय ब्रिटिश कोलंबिया के पास सालमन मछली खाने वाली ओर्का सालमन को अपने सिर पर टोपी की तरह रख लेती थीं और फिर

खा जाती थीं। लेकिन कुछ समय बाद उन्होंने यह खेल बंद कर दिया। सवाल यह है कि इन वारदातों को हमले करार दिए जाने से क्या यह संदेश नहीं जाता कि ओर्का मनुष्यों को दुश्मन की तरह देखती हैं। बिल हीनी का कहना है कि कभी ओर्का ने किसी मनुष्य पर हमला किया हो इसका कोई सुबूत दर्ज नहीं है। ओर्का बहुत ही विशाल और ताकतवर जानवर है। उनके लिए नौकाओं को टक्कर मारना एक खेल भी हो सकता है। दूसरी बात यह है कि जिब्राल्टर की खाड़ी एक अत्यंत व्यस्त जलमार्ग है। क्या नौकाओं से पैदा होने वाला शोर भी इन वारदातों का कारण हो सकता है? बिल हीनी कहते हैं कि ओर्का ध्वनि के प्रति अत्यंत संवेदनशील होती हैं। हो सकता है नौकाओं का शोर उन्हें परेशान करता हो। अगर नौकाओं की आवाजाही ऐसे ही बढ़ती रही तो उनका यह व्यव्हार भी बंद होने की संभावना कम ही है। ओर्का को किलर व्हेल भी कहा जाता है और लगता है अब वो अपने इस नाम के अनुसार ही बर्ताव भी कर रही हैं।

ओर्का का जीवन

मियामी की फ्लोरिडा इंटरनेशनल यूनिवर्सिटी में जीव विज्ञान के प्रोफ़ेसर जेरेमी किज़्का लगभग बीस सालों से व्हेल और डॉल्फ़िन मछलियों का अध्ययन करते रहे हैं। वो कहते हैं कि ओर्का या किलर व्हेल दरअसल डॉल्फ़िन की एक प्रजाति है। ज़्यादातर लोग ओर्का को व्हेल समझते हैं मगर वो व्हेल नहीं बल्कि डॉल्फ़िन है। "ओर्का भी डॉल्फ़िन की तरह काली और सफ़ेद होती है। मगर उनका आकार डॉल्फ़िन से अलग होता है। डॉल्फ़िन की तरह उनकी चोंच नहीं होती। किलर व्हेल या ओर्का का शरीर भी चौड़ा और लंबा होता है। ओर्का नर की लंबाई छः फ़ीट तक होती है।" डॉल्फ़िन प्रजाति की ओर्का मछली को सदियों से किलर व्हेल कहा जाता रहा है। उन्हें यह नाम कई सदियों पहले समुद्री खोजकर्ताओं ने दिया जब उन्होंने ओर्का को शिकार करते देखा। जेरेमी किज़्का मानते हैं कि जब खोजकर्ताओं ने देखा कि ओर्का शार्क, डॉल्फ़िन और दूसरी व्हेल मछलियों जैसे बड़े समुद्री जीवों को अपना आहार बनाती हैं। उन्होंने देखा कि ओर्का कई बार अपने से काफ़ी बड़े जीवों का शिकार करती हैं। यही वजह होगी कि उन ओर्का को किलर व्हेल कहना शुरू कर दिया। इस तरह व्हेल किलर यानि व्हेल का शिकार करने वाली ओर्का का नाम किलर व्हेल पड़ गया। किलर व्हेल भी एक तरह की नहीं बल्कि अनेक प्रकार की होती हैं। उनका आहार, व्यवहार और शरीर भी हर में अलग होता है। नर ओर्का की औसत आयु तीस साल होती है, लेकिन वो साठ साल तक भी जी सकते हैं। मादा ओर्का की औसत आयु पचास साल तक होती है लेकिन वो नब्बे साल तक भी जी सकती हैं। ओर्का अधिकतर ठंडे इलाकों में रहती हैं। उनका सामाजिक तानाबाना मज़बूत होता है क्योंकि समुद्र में समस्याओं से जूझने या शिकार के लिए उन्हें एक दूसरे की ज़रूरत होती है। जेरेमी किज़्का का कहना है कि वो एक-दूसरे के साथ जानकारी का लगातार आदान प्रदान करती हैं। आपसी समन्वय और आदान-प्रदान से उनकी बुद्धि का बेहतर विकास होता है। उनका मस्तिष्क भी शरीर के अनुपात में बड़ा होता है। दुनिया में ओर्का की आबादी का अनुमान लगाना मुश्किल है। जेरेमी किज़्का का मानना है कि ज़्यादातर जगहों पर उनकी आबादी स्थिर है लेकिन यूरोप में वो लुप्तप्राय होने की कगार पर हैं। दक्षिण पश्चिमी यूरोप में उनके अजीब व्यवहार से यह बात भी सामने आई है कि हम उनके बारे में कितना कम जानते हैं। जेरेमी किज़्का कहते हैं कि लोगों में यह ग़लतफ़हमी पैदा हो रही है कि ओर्का दुष्ट प्राणी है जो इंसानों को नुकसान पहुंचाना चाहती हैं। बात सिर्फ़ इतनी है कि उनका व्यवहार हमसे अलग होता है।

समुद्री जीव विज्ञानी और नॉर्वे व्हेल म्यूज़ियम की एक्ज़ीबीशन डायरेक्टर हना स्ट्रेजर का कहना है कि मनुष्यों और ओर्का के बीच काफ़ी संपर्क होता है ख़ासतौर पर उन क्षेत्रों में जहां दोनों की तादाद ज़्यादा है।

मानव व्यवहार

समुद्री जीव विज्ञानी और नॉर्वे व्हेल म्यूज़ियम की एक्ज़ीबीशन डायरेक्टर हना स्ट्रेजर का कहना है कि मनुष्यों और ओर्का के बीच काफ़ी संपर्क होता है ख़ासतौर पर उन क्षेत्रों में जहां दोनों की तादाद ज़्यादा है। लोग व्हेल देखने आते हैं या मछली पकड़ने आते हैं जिससे दोनों के बीच संपर्क बढ़ता है। "किलर व्हेल यानि ओर्का भी वही मछलियां खाती हैं जो मछुआरे पकड़ते हैं। मिसाल के तौर पर ट्यूना, सालमन और हेरिंग। ओर्का इतनी चालाक होती हैं कि वो मछुआरों के जाल में फंसी मछलियां भी छीन लेती हैं। कई जगहों पर यह भी संघर्ष का एक कारण है।" मछुआरों द्वारा अत्यधिक मात्रा में मछलियां पकड़ने से क्षेत्र के समुद्र में मछलियों की संख्या कम हो जाती है जिसका असर ओर्का के आहार पर पड़ता है। हना स्ट्रेजर का कहना है कि अगर किलर व्हेल यानि ओर्का का शिकार कम हो जाए तो उसका असर उनकी संख्या पर भी पड़ता है। मिसाल के तौर पर, प्रशांत महासागर में कनाडा और अमेरिका के इलाके में किलर व्हेल की संख्या इतनी घट गई है कि वो लुप्त होने की कगार पर हैं। वहां लगभग सत्तर किलर व्हेल ही बची हैं। मछुआरों द्वारा सालमन के अत्यधिक शिकार की वजह से वहां किलर व्हेल के लिए पर्याप्त आहार नहीं बचा है जिसकी वजह से उनकी तादाद तेज़ी से घट गई है। ओर्का की संख्या घटने का एक कारण यह भी है कि कई देशों में मनोरंजन के लिए उन्हें पकड़ कर मरीन पार्क में रखा जाता है। अब कई देशों ने किलर व्हेल को पकड़ कर मरीन पार्क में रखने पर प्रतिबंध लगा दिया है। मगर कुछ देशों में यह अभी भी जारी है। रूस में किलर व्हेल को पकड़ने पर लगा चार साल का प्रतिबंध इस साल समाप्त होने जा रहा है। हना स्ट्रेजर ने बीबीसी को बताया, "इस बात को लेकर काफ़ी चिंता है क्योंकि यूक्रेन युद्ध की वजह से रूस पर लगे प्रतिबंध के चलते रूसी वैज्ञानिकों, शोधकर्ताओं और वन्य प्राणी संरक्षकों के साथ संपर्क ख़त्म हो गया है। चिंता यह है कि रूस फिर से किलर व्हेल को पकड़ना शुरू कर देगा। रूस में पकड़े गए इन प्राणियों को चीन में बेच दिया जाता है क्योंकि वहां के मरीन पार्कों में इनकी बड़ी मांग है।" मगर कई समुदाय किलर व्हेल को बड़ा महत्व देते हैं। मिसाल के तौर पर ऑस्ट्रेलिया के अबोरिजिनल या मूल निवासी समुदाय के लोग किलर व्हेल को ना केवल अपने परिवार के सदस्य की तरह देखते हैं बल्कि उसे पूजनीय भी मानते हैं। हना स्ट्रेजर कहती हैं कि अब विज्ञान और जानकारी के प्रसार के कारण अन्य जगहों पर भी लोगों में किलर व्हेल के प्रति नज़रिया बदल रहा है। वो इसे दुष्ट नहीं बल्कि एक प्यारे रोचक प्राणी की तरह देखने लगे हैं। अब लोग ओर्का को पकड़ने या मारने के ख़िलाफ़ हो रहे हैं और चाहते हैं कि इनका संरक्षण किया जाए।

समुद्र के माली

व्हेल एंड डॉल्फ़िन कंज़रवेशन नाम की संस्था की शोधकर्ता निकोला हिजिन्स कहती हैं कि ज्यादातर

लोग समुद्र की पेचीदगी को नहीं समझते। वो नहीं जानते कि हमारी उपजीविका भी समुद्र पर निर्भर है। अत्यधिक मात्रा में मछली पकड़ने, ज़मीन के ज़हरीले कचरे को समुद्र में फेंकने और वहां होने वाले ध्वनि प्रदूषण से भी समद्री जीवन को नुकसान पहुंचता है। "यूके में ओर्का की संख्या बेहद घट गई है। यहां उत्तर पश्चिमी तट के पास स्कॉटलैंड, आयरलैंड और वेल्स के बीच समुद्र में केवल दो नर ओर्का बचे हैं। प्रदूषण और समुद्र में फेंके गए ज़हरीले कचरे की वजह से उनकी संख्या घट गई है। समुद्र के प्रदूषण को रोकने के लिए सरकार को ठोस कदम उठाने चाहिए।"

इन प्राणियों के संरक्षण के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कदम उठाने की ज़रूरत है क्योंकि वो किसी सीमा के अधीन नहीं होते। आज यूके में हैं तो हो सकते हैं कुछ समय बाद वो कनाडा या अमेरिका के पास समुद्र में चली जाएं। ऐसी प्रजातियों के संरक्षण के लिए सुंयक्त राष्ट्र की संधि भी हुई है। समुद्री जीवों को कई बातों से ख़तरा पैदा हो रहा है। धरती का बढ़ता तापमान भी एक कारण है। निकोला हिजिन्स की राय है कि अगर समुद्र के पानी का तापमान बढ़ेगा तो ओर्का, डॉल्फ़िन और व्हेल को वहां जाना पड़ेगा जहां उनके लिए शिकार उपलब्ध हो। इससे होगा यह कि वो कुछ जगहों पर ज़रूरत से ज़्यादा संख्या में इकठ्ठा होने लगेंगी और संतुलन बिगड़ेगा।

जलवायु परिवर्तन का इन प्रजातियों पर कई तरीके से असर पड़ सकता है। इन्हें बचाने के लिए इनके क्षेत्र में अतिक्रमण बंद किया जाना चाहिए। साथ ही ओर्का के संरक्षण के लिए उनके बारे में जागरूकता बढ़ाना भी ज़रूरी है ताकि लोग समझ सकें कि उनका शिकार करना पर्यावरण के लिए हानिकारक है। एक या दो ओर्का को मारने से भी इनकी संख्या पर भारी

समुद्री जीवों को कई बातों से ख़तरा पैदा हो रहा है। धरती का बढ़ता तापमान भी एक कारण है। निकोला हिजिन्स की राय है कि अगर समुद्र के पानी का तापमान बढ़ेगा तो ओर्का, डॉल्फ़िन और व्हेल को वहां जाना पड़ेगा जहां उनके लिए शिकार उपलब्ध हो।

असर पड़ सकता है। व्हेल के मांस या तेल के लिए उनका शिकार करना कई देशों में आम बात होती थी। लेकिन1980 के दशक के शुरुआती सालों में अंतरराष्ट्रीय व्हेलिंग कमिशन के सदस्य देशों में व्हेल के शिकार पर प्रतिबंध लगाने पर सहमति हो गई थी ताकि समुद्र में व्हेल मछलियों की संख्या फिर से बढ़ सके। निकोला हिजिन्स का मानना है कि व्हेल के शिकार पर लगा प्रतिबंध जारी रहना चाहिए क्योंकि इससे कई व्हेलों की ज़िंदगी बच गई है। यह व्हेल और डॉल्फ़िन के संरक्षण के लिए उठाया गया सबसे अच्छा कदम साबित हुआ है। जापान, ग्रीनलैंड, आइसलैंड और नॉर्वे में व्हेल का शिकार जारी है। जहां तक ओर्का का सवाल है क्या उन्हें बचाने के लिए कदम उठाए जा सकते हैं या अब काफ़ी देर हो चुकी है? निकोला हिजिन्स का कहना है, "कुछ जगहों पर तो काफ़ी देर हो चुकी है लेकिन अन्य जगहों पर जहां वो मौजूद हैं वहां उन्हें बचाने के लिए कदम उठाए जा सकते हैं। इसके लिए हम अधिक कानून बना सकते हैं और लोगों में उनके प्रति जागरूकता पैदा कर सकते हैं। दरअस्ल व्हेल और डॉल्फ़िन को समुद्र का माली करार दिया जाना चाहिए क्योंकि वो समुद्र के पोषक तत्वों को एक जगह से दूसरी जगह वितरित करते हैं ताकि समुद्री इकोसिस्टिम का संतुलन बना रहे। उनके बिना समुद्र की हालत कुछ और होगी वहां बहुत कम जीव बचेंगे।" तो आइए लौटते हैं अपने मुख्य प्रश्न की ओर। क्या ओर्का यानि किलर व्हेल्स का हाल ठीक है? जवाब यही है कि उनका हाल ठीक नहीं है। एक क्षेत्र में हमने देखा कि ओर्का नौकाओं पर हमले कर के उसके पतवार ध्वस्त कर देती हैं। यह व्यवहार निश्चित ही अजीब तो है लेकिन कई अन्य क्षेत्रों में ओर्का के सामने कई ख़तरे मंडरा रहे हैं। उन्हें सबसे बड़ा ख़तरा है मनुष्यों द्वारा अत्यधिक मात्रा में मछली पकड़ने से। वहीं समुद्र के प्रदूषण और नौकाओं की आवाजाही से होने वाले ध्वनि प्रदूषण का भी ओर्का के जीवन पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है। हमारी एक्सपर्ट हना स्ट्रेजर कहती हैं कि हमें ओर्का के प्रति जितनी जिज्ञासा है उतना ही उनसे डर भी लगता है। उनके क्षेत्र में हस्तक्षेप बंद कर के उनके बारे में लोगों में जागरूकता पैदा करके और हम उनका जीवन आसान ज़रूर बना सकते है। ■

काजीरंगा में दो नई स्तनधारियों की खोज

असम के काजीरंगा राष्ट्रीय उद्यान और टाइगर रिजर्व में जीवों की सूची में दो नई स्तनधारी प्रजातियां जोड़ी गई हैं। यह पृथ्वी पर रहने वाले एक सींग वाले गैंडे का घर है।

■ दयानिधि

दो स्तनधारियों में मायावी बिंटुरोंग (आर्कटिक्टिस बिंटुरोंग), भारत में सबसे बड़ा सिवेट जिसे बेयरकैट के नाम से भी जाना जाता है और छोटे पंजे वाला ऊदबिलाव (एओनिक्स सिनेरियस) शामिल है। दोनों वन्यजीव संरक्षण अधिनियम 1972 की अनुसूची के तहत सूचीबद्ध हैं। काजीरंगा राष्ट्रीय उद्यान की वेबसाइट पर प्रकाशित रिपोर्ट के मुताबिक, हाल में हुई गणना के दौरान दो प्रजातियों को दर्ज किया गया, जिससे 1,302 वर्ग किमी वाले बाघ अभयारण्य में स्तनधारी की संख्या अब 37 हो गई है। काजीरंगा में स्तनधारियों की सूची को 1985 में यूनेस्को द्वारा विश्व धरोहर स्थल घोषित किया गया था। यहां शीर्ष पर पांच बड़े जानवर रहते हैं, जिसमें भारतीय एक सींग वाला विशाल गैंडा (राइनोसेरोस यूनिकॉर्निस), भारतीय हाथी (एलिफस मैक्सिमस), बंगाल टाइगर (पैंथेरा टाइग्रिस), जंगली पानी में रहने वाली भैंस (बुबलस बुबालिस) और पूर्वी दलदल में रहने वाले हिरण (सर्वस डुवाउसेली) शामिल हैं। दक्षिण और दक्षिण-पूर्व एशिया का मूल निवासी एक वृक्षीय स्तनपायी, बिंटुरोंग अपनी रात्रिचर और पेड़ों में रहने की आदतों के कारण आसानी से नहीं देखा जा सकता है। काजीरंगा की निदेशक ने बताया कि, यह अपनी रेंज में भी असामान्य है और भारत में पूर्वोत्तर तक ये फैले हुए हैं।

गणना रिपोर्ट में बताया गया है कि बिंटुरोंग की तस्वीर 10 जनवरी को टाइगर रिजर्व में पांचवें प्रवासी पक्षी गणना के दौरान ली गई थी। रिपोर्ट में आगे कहा गया कि छोटे पंजे वाले ऊदबिलाव को असम वन विभाग के सहयोग से भारतीय वन्यजीव संस्थान द्वारा आयोजित एक संक्षिप्त प्रशिक्षण कार्यक्रम के बाद देखा गया था। इसे एशियाई छोटे पंजे वाले ऊदबिलाव के रूप में भी जाना जाता है, इस स्तनपायी की वितरण सीमा भारत से पूर्व की ओर दक्षिण पूर्व एशिया और दक्षिण चीन तक फैली हुई है। भारत में, यह ज्यादातर पश्चिम बंगाल, असम, अरुणाचल प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु के संरक्षित क्षेत्रों और पश्चिमी घाट क्षेत्र में केरल के कुछ हिस्सों में पाया जाता है।

बिंटुरोंग की तस्वीर 10 जनवरी को टाइगर रिजर्व में पांचवें प्रवासी पक्षी गणना के दौरान ली गई थी। रिपोर्ट में आगे कहा गया कि छोटे पंजे वाले ऊदबिलाव को असम वन विभाग के सहयोग से भारतीय वन्यजीव संस्थान द्वारा आयोजित एक संक्षिप्त प्रशिक्षण कार्यक्रम के बाद देखा गया था।

छोटे पंजे वाले ऊदबिलाव के पैर आंशिक रूप से जाल वाले होते हैं और पंजे छोटे होते हैं, जो उन्हें जलीय वातावरण में कुशल शिकारी बनाते हैं। वे मुख्य रूप से मीठे पानी के आवासों में पाए जाते हैं जहां वे मछली, क्रस्टेशियंस और मोलस्क का आहार खाते हैं। रिपोर्ट में कहा गया है कि छोटे पंजे वाले ऊदबिलाव की जानकारी पहले पश्चिमी हिमालय और ओडिशा के कुछ हिस्सों से मिली थी। इन दोनों क्षेत्रों में इसकी उपस्थिति का कोई हालिया रिकॉर्ड नहीं है। रिपोर्ट के मुताबिक, काजीरंगा राष्ट्रीय उद्यान और टाइगर रिजर्व में पाए जाने वाले अन्य स्तनधारियों में भारतीय जंगली सूअर (सस स्क्रोफा), भारतीय गौर (बोस गौरस), सांभर (सर्वस यूनिक्लोर), हूलॉक या सफेद-भूरे गिब्बन (हायलोबेट्स हूलॉक), गंगा डॉल्फिन (प्लैटनिस्टा गैंगेटिका), कैप्ड लंगूर या लीफ मंकी (प्रेस्बिटिस पाइलटस), स्लॉथ बियर (मेलर्सस उर्सिनस), तेंदुआ (पेंथेरा पार्डस), और सियार (कैनिस ऑरियस) आदि शामिल हैं। ऊदबिलाव मुख्य रूप से नदियों, झरनों और आर्द्रभूमि जैसे मीठे पानी के आवासों में पाए जाते हैं, जहां वे मछली, क्रस्टेशियंस और मोलस्क का आहार खाते हैं। छोटे पंजे वाले ऊदबिलाव अत्यधिक सामाजिक प्राणी हैं, जो पारिवारिक समूहों में रहते हैं और विभिन्न स्वरों के माध्यम से आपस में संवाद करते हैं।

रिपोर्ट में चिंता जाहिर करते हुए कहा गया है कि दुर्भाग्य से, अन्य ऊदबिलाव प्रजातियों की तरह, छोटे पंजे वाले ऊदबिलाव को निवास स्थान की हानि, प्रदूषण और अवैध शिकार जैसे खतरों का सामना करना पड़ रहा है। ■

अल्ट्रा प्रोसेस्ड फूड करते हैं सेहत खराब

अगर आप रेल या सड़क से लंबी यात्रा कर रहे हों या फिर कहीं घूमने गए हों और बीच सफ़र में भूख लग जाए तो पेट भरने के लिए दाल, चावल या रोटी जैसे विकल्पों की तुलना में आपको चिप्स, बिस्किट और कोल्ड ड्रिंक्स जैसे भरपूर विकल्प मिल जाएंगे। कई बार हम यूं ही टाइम पास करने के लिए या फिर पेट भरा होने के बावजूद स्वाद की वजह से भी इन्हें खाते हैं। लेकिन क्या आप जानते हैं कि खाने-पीने की पारंपरिक चीज़ों की जगह खाए जाने वाले ये स्वादिष्ट विकल्प 'अल्ट्रा प्रोसेस्ड फ़ूड' कहलाते हैं और इनका ज़्यादा इस्तेमाल सेहत के लिए हानिकारक होता है?

■ सुशीला सिंह और आदर्श राठौर

यही नहीं, विशेषज्ञों का कहना है कि इन्हें कुछ इस तरह से तैयार किया जाता है ताकि इन्हें खाने में मज़ा आए और हम इनके आदी हो जाएं। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) और इंडियन काउंसिल फ़ॉर रिसर्च ऑन इंटरनेशनल इकोनॉमिक रिलेशन (आईसीआरआईईआर) की हाल ही में आई एक रिपोर्ट में कहा गया है कि पिछले 10 सालों में भारत में अल्ट्रा प्रोसेस्ड फ़ूड के बाज़ार में तेज़ी से बढ़ोतरी हुई है।

क्या होता है अल्ट्रा प्रोसेस्ड फ़ूड

डॉक्टर अरुण गुप्ता बाल रोग विशेषज्ञ हैं और न्यूट्रिशन एडवोकेसी इन पब्लिक इंटरेस्ट (एनएपीआई) नाम के थिंक टैंक के संयोजक हैं। वह अल्ट्रा प्रोसेस्ड फूड का मतलब कुछ इस तरह बताते हैं, "सरल शब्दों में समझें तो अल्ट्रा प्रोसेस्ड फूड वह खाद्य सामग्री है, जिसे आप आमतौर पर अपने किचन में नहीं बना सकते। यह सामान्य खाने की तरह नहीं दिखती। जैसे कि पैकेट में आने वाले चिप्स, चॉकलेट, बिस्किट और बड़े पैमाने पर बनाए गए ब्रेड और बन वगैरह।" वे कहते है, "हर समुदाय अपने स्वाद और पसंद के हिसाब से खाना तैयार करता है। इसे भी फूड प्रोसेसिंग यानी खाद्य प्रसंस्करण कहा जा सकता है। अगर हम दूध से दही बनाते हैं तो वो प्रोसेसिंग है। लेकिन अगर किसी बड़ी इंडस्ट्री में दूध से दही बनाया जाए और उसे स्वादिष्ट बनाने के लिए रंग, फ्लेवर, चीनी या कॉर्न सिरप डाला जाए तो यह अल्ट्रा प्रोसेस्ड फूड होगा।" वह कहते हैं कि अल्ट्रा प्रोसेस्ड फूड में डाली

जाने वाली ये चीज़ें उनकी पोषकता नहीं बढ़ातीं बल्कि उन्हें इसलिए डाला जाता है ताकि आप इन्हें खाते रहें, इनकी बिक्री होती रहे और ज्यादा मुनाफ़ा हो। ऐसे में इन्हें सिर्फ़ बड़े उद्योग ही तैयार कर सकते हैं। अल्ट्रा प्रोसेस्ड फ़ूड को कॉस्मैटिक फ़ूड भी कहा जाता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के मुताबिक़, अल्ट्रा-प्रोसेस्ड फूड ऐसी सामग्री से बनाए जाते हैं जिन्हें औद्योगिक तकनीकों और प्रक्रियाओं से तैयार किया जाता है।

डब्लयूएचओ के अनुसार, अल्ट्रा प्रोसेस्ड चीज़ों के कुछ उदाहरण हैं-

कार्बोनेटेड कोल्ड ड्रिंक

- मीठे, फ़ैट वाले या नमकीन स्नैक्स, कैंडी
- बड़े पैमाने पर तैयार ब्रेड, बिस्किट, पेस्ट्री, केक, फ्रूट योगर्ट
- रेडी टू ईट मीट, चीज़, पास्ता, पिज़्ज़ा, फ़िश, सॉसेज, बर्गर, हॉट डॉग
- इन्स्टेंट सूप, इन्स्टेंट नूडल्स, बेबी फॉर्मूला

विशेषज्ञों के अनुसार इन सब चीज़ों में औद्योगिक प्रक्रिया के तहत चीनी, नमक, फ़ैट्स (वसा) या इमल्सिफ़ाई (दो अलग-अलग तरह के पदार्थों को मिलाना) करने वाले केमिकल और प्रिज़र्वेटिव डाले जाते हैं, जिन्हें हम अमूमन अपने किचन में इस्तेमाल नहीं करते।

प्रिज़र्वेशन की शुरुआत

नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ़ न्यूट्रिशन में पूर्व वरिष्ठ वैज्ञानिक डॉ। वी सुदर्शन राव बताते हैं कि जब सभ्यता की शुरुआत हुई तभी से प्रिज़र्वेशन (संरक्षण) का इस्तेमाल होने लगा। इसका मुख्य काम भोजन को लंबे समय के इस्तेमाल के लिए बैक्टीरिया और फफूंद आदि से ख़राब होने से बचाना था। वे बताते हैं, ''हमारे पूर्वजों ने ये जाना कि अगर खाद्य पदार्थों से नमी को निकाल लिया जाए तो उसे प्रिज़र्व किया जा सकता है। इसलिए सबसे पहले खाद्य पदार्थों को धूप में सुखाने से शुरुआत हुई, क्योंकि उन्होंने जाना कि सूखे हुए खाद्य पदार्थों को लंबे समय तक इस्तेमाल किया जा सकता है।''

हैदराबाद स्थित, इंडियन कॉउसिल फ़ॉर मेडिकल रिसर्च में वैज्ञानिक रह चुके डॉ। वी सुदर्शन राव बताते हैं कि प्रिज़र्वेशन के लिए नमक, शुगर का उपयोग होने लगा, जिन्हें आप प्रिज़र्वटिव कह सकते हैं। लेकिन अब नई तकनीक आने की वजह से प्रिज़र्वेशन में कई बदलाव आए हैं। इसी बात को समझाते हुए गुजरात के राजकोट में नगरपालिका निगम के स्वास्थ्य विभाग में डॉ । जयेश वकानी बताते हैं, "उदाहरण के तौर पर आप अचार लीजिए। उसमें अधिक नमक, शुगर, सिरका और सिट्रिक एसिड को इस्तेमाल किया जाता है, जो प्राकृतिक तौर पर प्रिज़र्वटिव का काम काम करते हैं। अगर कृत्रिम प्रिज़र्वेटिव इस्तेमाल करने होते हैं तो भारतीय खाद्य संरक्षा एवं मानक प्राधिकरण (एफ़एसएसआई) के मानकों के अनुसार उन्हें इस्तेमाल करना होता है।''

प्रिज़र्वेटिव का इस्तेमाल कॉस्मेटिक्स में भी

जानकार बताते हैं कि खाद्य पदार्थों में होने वाले प्रिज़र्वेटिव, जिनमें कई प्रकार के एंटीमाइक्रोबियल, एंटीऑक्सिडेंट, सॉर्बिक एसिड आदि शामिल हैं, उनका हर खाद्य सामग्री में इस्तेमाल नहीं हो सकता। खाद्य पदार्थों में बैक्टीरिया को रोकने के लिए एंटीमाइक्रोबियल प्रिज़र्वेटिव का उपयोग होता है। वहीं तेल में एंटीऑक्सिडेंट, जबकि सॉर्बिक एसिड प्रिज़र्वेटिव का इस्तेमाल फफूंद से बचाने के लिए होता है। प्रिज़र्वेटिव का इस्तेमाल केवल खाद्य सामग्रियों में ही नहीं होता, बल्कि कॉस्मेटिक्स जैसे क्रीम, शैम्पू, सनस्क्रीन में भी होता है, ताकि इन्हें लंबे समय तक उपयोग किया जा सके। लेकिन क्या ये हानिकारक हो सकते हैं? इस सवाल का जवाब देते हुए डॉ। जयेश वकानी कहते हैं, ''किसी भी पदार्थ या खाद्य सामग्री में प्रिज़र्वेटिव का उपयोग सुरक्षा मानकों को ध्यान में रखकर किया जाता है और जितनी मात्रा की ज़रूरत हो, केवल उतना होता है, क्योंकि ज़्यादा इस्तेमाल का कोई फ़ायदा नहीं होता।'' डॉ। वी सुदर्शन राव कहते हैं कि भारतीय खाद्य संरक्षा एवं मानक प्राधिकरण (एफ़एसएसआई) खाद्य सामग्रियों में इस्तेमाल होने वाले प्रिज़र्वेटिव की जाँच करता है और ये पाया गया है कि 60-70 साल तक लेने पर भी इनका शरीर को कोई नुक़सान नहीं होता।

हर समुदाय अपने स्वाद और पसंद के हिसाब से खाना तैयार करता है। इसे भी फूड प्रोसेसिंग यानी खाद्य प्रसंस्करण कहा जा सकता है। अगर हम दूध से दही बनाते हैं तो वो प्रोसेसिंग है। लेकिन अगर किसी बड़ी इंडस्ट्री में दूध से दही बनाया जाए और उसे स्वादिष्ट बनाने के लिए रंग, फ्लेवर, चीनी या कॉर्न सिरप डाला जाए तो यह अल्ट्रा प्रोसेस्ड फूड होगा।

प्रिज़र्वेटिव और अल्ट्रा प्रोसेस्ड फ़ूड

उपभोक्ताओं को जागरूक करने वाली संस्था 'कंज़्यूमर वॉइस' के सीईओ आशिम सान्याल कहते हैं कि खाने-पीने की चीज़ों को लंबे समय तक ख़राब होने से बचाने के अलावा टेस्ट बढ़ाने और रंग डालकर आकर्षक बनाने में भी प्रिज़र्वेटिव को इस्तेमाल किया जाता है। ये प्रिज़र्वेटिव कृत्रिम होते हैं और सीमित मात्रा में ही डाले जाते हैं। लेकिन अल्ट्रा प्रोसेस्ड फूड को ख़राब होने से बचाने के लिए जो तरीक़े अपनाए जाते हैं, उससे ये बेहद हानिकारक बन जाते हैं। डॉक्टर आशिम सान्याल बताते हैं कि खाद्य पदार्थों में प्रिज़र्वेटिव के इस्तेमाल को अलग करके नहीं देखा जा सकता बल्कि इसे अल्ट्रा-प्रोसेस्ड फूड से जोड़कर देखा जाना चाहिए।

भारत में प्रोसेस्ड फूड के कारोबार का सेक्टर 500 अरब डॉलर है। आशिम सान्याल बताते हैं कि सब्ज़ी, दाल आदि बनाना भी प्रोसेस्ड फूड कहलाता है लेकिन अल्ट्रा-प्रोसेस्ड फूड वो होता है, जिसे टेक्निकल इनोवेशन के ज़रिए प्रयोगशाला में नए रूप में ढाला जाता है। इसमें शुगर, सैचुरेटेड फैट्स आदि के अलावा प्रिज़र्वेटिव के मिश्रण बहुत ज़्यादा मात्रा में होते हैं। उनके अनुसार, ''डब्लयूएचओ भी कहता है कि अल्ट्रा प्रोसेस्ड फूड प्रिज़र्वेटिव और केमिकल से भरपूर होते हैं। इनमें प्रिज़र्वेटिव इसलिए डाले जाते हैं ताकि लंबे समय तक इस्तेमाल किया जा सके। इनकी आदत डलवाने के लिए इनमें कुछ एडिक्टिव (लत लगाने वाले पदार्थ) भी डाले जाते हैं।''

आशिम सान्याल कहते हैं कि उदाहरण के तौर पर चिप्स, कोल्ड ड्रिंक या अन्य खाद्य पदार्थों की बच्चों से लेकर बुज़ुर्गों तक को आदत पड़ जाती है और यही आदत डलवाने के लिए ऐसे पदार्थ डाले जाते है।

उनके अनुसार, ''ये वैज्ञानिक तौर पर भी साबित हो चुका है कि अल्ट्रा प्रोसेस्ड

फूड बहुत सी बीमारियों की जड़ बन चुका है। हमने जब भी जाँच की तो पाया कि अल्ट्रा प्रोसेस्ड फूड में प्रिज़र्वेटिव और अन्य केमिकल की मात्रा काफ़ी ज़्यादा होती है। वह कहते हैं- अल्ट्रा प्रोसेसिंग में पोषक तत्व ख़त्म हो जाते हैं। इस खाने में कोई गुणवत्ता नहीं रहती। जैसे तंबाकू या सिगरेट की लत लगती है, वैसे ही ऐसे भोजन के भी एडिक्टव होने के कारण लत पड़ जाती है। विशेषज्ञों का कहना है कि अल्ट्रा प्रोसेस्ड फूड के साथ दिक्कत यह है कि हमें पता ही नहीं चलता कि इन्हे कितना ज़्यादा खाया जा रहा है। डॉक्टर अरुण गुप्ता कहते हैं, "खाना खाते वक्त हमारा दिमाग हमें सिग्नल देता है कि अब पेट भर गया। लेकिन अल्ट्रा प्रोसेस्ड फूड को कुछ इस तरीक़े से तैयार किया जाता है कि आपको इन्हें खाने में मज़ा आए। जब आप इसे खा रहे होते हैं तो दिमाग़ से ऐसा सिग्नल नहीं आता कि पेट भर गया और आप इसे खाते चले जाते हैं।"

प्रिज़र्वेटिव और अल्ट्रा प्रोसेस्ड फ़ूड के नुक़सान

डॉ। जयेश वकानी कहते हैं कि अगर कृत्रिम प्रिज़र्वटिव का इस्तेमाल मानकों से ज़्यादा मात्रा और लंबे समय तक किया जाए तो शरीर में कैंसर भी बन सकता है। डॉ अरुण गुप्ता भी कहते हैं कि कि कई बार खाद्य पदार्थों की शेल्फ़ लाइफ़ बढ़ाने के लिए ऐसे प्रिज़र्वेटिव डाले जाते हैं, जिनसे नुक़सान हो सकता है। वह कहते हैं, "इनमें प्रिज़र्वेटिव और कलरिंग एजेंट जैसे केमिकल होते हैं, जिनसे शरीर में एलर्जी हो सकती है या फिर शरीर की इम्युनिटी कमज़ोर हो जाती है। भले ही तुरंत पता न चले, लेकिन लंबे समय में ये ख़तरनाक साबित हो सकते हैं।" ग्लोबल हंगर इंडेक्स की साल 2023 की रिपोर्ट के अनुसार, 125 देशों में भारत भूख के मामले में 111वें स्थान पर है और भूख से जूझ रही सबसे बड़ी आबादी वाला देश है। जहां एक ओर देश कुपोषण की चुनौती झेल रहा है, वहीं मोटापे की बढ़ती समस्या का सामना भी कर रहा है। मोटापा बढ़ाने में अल्ट्रा प्रोसेस्ड फूड भी भूमिका निभा रहे हैं। डॉक्टर अरुण गुप्ता कहते हैं, "कभी कभार इन्हें खाया जा सकता है, लेकिन जब हम इनका इस्तेमाल अपने भोजन के दस फ़ीसदी से ज़्यादा करने लगते हैं, यानी कि 2000 कैलोरी में 200 कैलोरी से ज़्यादा अगर अल्ट्रा-प्रोसेस्ड फूड से आ रही हों तो नुक़सान की शुरुआत हो जाती है।" वे कहते कि सबसे पहले तो वज़न बढ़ने लगता है, जो ख़ुद में कई बीमारियों को आमंत्रण देता है। इससे डायबिटीज़, ब्लड प्रेशर, दिल और किडनी से जुड़ी बीमारियाँ और यहा तक कि कैंसर होने का ख़तरा बढ़ जाता है। डॉक्टर अरुण गुप्ता के अनुसार, ''हालिया शोध ये भी इशारा करते हैं कि अल्ट्रा प्रोसेस्ड फूड इस्तेमाल करने से डिप्रेशन और एंग्ज़ाइटी भी हो सकती है। ऐसा क्यों है, इस पर अभी शोध चल रहे हैं।" आमतौर पर ये देखा गया है कि हर उम्र और वर्ग के लोग अल्ट्रा प्रोसेस्ड फूड खाते हैं, लेकिन भारत के लिहाज से देखें तो बच्चों को ज़्यादा ख़तरा है, क्योंकि आमतौर पर बच्चों को मीठी चीज़ें पसंद होती हैं। वे चिप्स, कैंडी, चॉकलेट, पैक्ड जूस और कोल्ड ड्रिंक्स खाना पसंद करते हैं। डॉक्टर अरुण गुप्ता बताते हैं कि वैसे तो इस संबंध में ज़्यादातर शोध वयस्कों पर हुए हैं, लेकिन 2017 में हुए एक शोध में पता चला था कि क़रीब पचास फ़ीसदी बच्चों को अल्ट्रा प्रोसेस्ड फूड से नुक़सान हो रहा है और ये उन्हें मोटापे की ओर धकेल रहा है।

क्या है बचने का रास्ता?

जानकार बताते हैं कि अल्ट्रा प्रोसेस्ड फूड खाने की आदत से बचना चाहिए। आशिम सान्याल बताते हैं कि अगर आप एक हफ़्ते में चार बार ऐसा भोजन या खाद्य पदार्थ खाते हैं तो धीरे-धीरे इसके सेवन में कमी लाएं। साथ ही वे कहते हैं कि लोगों को फूड लेबल के बारे में जागरूक करने की भी ज़रूरत है। इसके अलावा, ऐसे खाद्य पदार्थ बनाने वाली कंपनियों को भी सामग्रियों के फ्रंट पर प्रमुखता से जानकारी देनी चाहिए। उनके अनुसार, ''हम फ्रंट ऑफ़ पैक न्यूट्रिशनल लेबलिंग पर ज़ोर दे रहे हैं, ताकि लेबल में सामने की ओर ये चीज़ें बताई जाएं कि इसमें शुगर ज़्यादा है, नमक ज़्यादा है या फ़ैट ज़्यादा है। इन मुख्य चीज़ों पर ध्यान दिया जाएगा तो 80 फ़ीसदी समस्या पर रोक लग सकेगी। अभी ये सारी जानकारियाँ लेबल के पीछे लिखी होती हैं और इतनी छोटी होती हैं कि ग्राहकों का ध्यान ही नहीं जाता।'' आशिम सान्याल उदाहरण देते है कि लातिन अमेरिकी देशों ने फ्रंट लेबलिंग शुरू की है और इससे लोगों की खाने की आदत में बदलाव आया है, क्योंकि वे जागरूक हुए हैं। वहीं इस बात पर भी बहस होती है कि अगर लेबलिंग में जानकारी दी गई तो इससे ब्रिकी पर असर पड़ेगा। इसके जवाब में आशिम सान्याल कहते है कि सिगरेट और तंबाकू पर चेतावनी डाली गई है, क्या इससे ऐसे उत्पादों की ब्रिकी बंद हो गई? वहीं, डॉक्टर अरुण गुप्ता कहते हैं कि इस मामले में सबसे बड़ी भूमिका सरकार की है। वह कहते हैं, "सरकार की ज़िम्मेदारी सबसे बड़ी है। लोग क्या खा रहे हैं, उन्हें पता होना चाहिए। इसके अलावा, मीडिया, समाज और संस्थाओं का भी फ़र्ज़ है कि लोगों को इस बारे में जागरूक करें। फिर लोगों की अपनी मर्ज़ी है कि क्या करना है।" डॉक्टर अरुण गुप्ता कहते हैं कि जिस तरह से दो साल तक के शिशुओं के लिए बेबी फूड का विज्ञापन करने पर भारत में रोक लगाई गई है, उसी तरह ज़्यादा नमक, चीनी और फ़ैट वाली सामग्रियों को लेकर भ्रामक प्रचार पर भी रोक लगनी चाहिए। वह कहते हैं, "लोगों को पता चलना चाहिए कि कौन सी चीज़ हानिकारक है। हो सकता है कि फिर भी लोग खाएं, लेकिन उन्हें पता होगा कि इन चीज़ों को कम खाना चाहिए।" डॉक्टर अरुण गुप्ता के अनुसार, "ऐसी नीतियों से इंडस्ट्री को भी संदेश जाता है कि भले वे प्रोसेस्ड फूड बनाएं, मुनाफ़ा कमाएं, इसमें कुछ बुरा नहीं है। लेकिन मुनाफ़ा भी कमाना और लोगों की सेहत से खिलवाड़ भी करना, ये सही नहीं है।" ■

भारत में बढ़ रहा है ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन

■ युगांतर प्रकृति नेटवर्क

भारत के ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में कृषि दूसरा सबसे बड़ा योगदानकर्ता है। हालांकि 2016 से 2019 तक कुल उत्सर्जन में कृषि की हिस्सेदारी 14.4 प्रतिशत से घटकर 13.4 प्रतिशत हुई है, लेकिन फिर भी इस क्षेत्र से होने वाला पूर्ण उत्सर्जन 3.12 प्रतिशत बढ़ गया, जो 421 मीट्रिक टन कार्बन डाइऑक्साइड के समकक्ष (MtCO2e) तक पहुंच गया। कृषि के कारण कुल उत्सर्जन 4.5 प्रतिशत बढ़कर 2019 में 2,647 MtCO2e हो गया, जो 2016 में 2,531 MtCO2e था। केंद्रीय पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय द्वारा जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कन्वेंशन (यूएनएफसीसीसी) को सौंपे गए तीसरे नेशनल काम्युनिकेशन एंड इनिशियल एडप्टेशन कॉम्युनिकेशन में इसकी सूचना दी गई है। कृषि क्षेत्र से ग्रीन हाउस गैस के उत्सर्जन का स्रोत पशुधन की वजह से होने वाले मीथेन से उत्पन्न होता है, जो मवेशी, भेड़, बकरी और भैंस जैसे जानवरों में पाचन प्रक्रिया का एक प्राकृतिक हिस्सा है। इस क्षेत्र में अन्य प्रमुख ग्रीन हाउस गैस के स्रोत चावल की खेती और कृषि मिट्टी से उत्सर्जित नाइट्रस ऑक्साइड हैं। सामूहिक रूप से, ये स्रोत कुल कृषि उत्सर्जन में 90 प्रतिशत से अधिक का योगदान करते हैं। कृषि अवशेषों को खेत में जलाने से भी अतिरिक्त उत्सर्जन होता है।

खेतों में कृषि अवशेष जलाने को छोड़कर अन्य सभी क्षेत्रों में उत्सर्जन में वृद्धि देखी गई। पशुधन से मीथेन उत्सर्जन में 0.2 प्रतिशत की मामूली वृद्धि हुई है, जो कि पशु आबादी में वृद्धि के कारण है, जिसमें क्रॉस-ब्रीड मवेशियों की संख्या में 10 प्रतिशत की उल्लेखनीय वृद्धि भी शामिल है।

दिलचस्प बात यह है कि खेतों में कृषि अवशेष जलाने को छोड़कर अन्य सभी क्षेत्रों में उत्सर्जन में वृद्धि देखी गई। रिपोर्ट में कहा गया है कि पशुधन से मीथेन उत्सर्जन में 0.2 प्रतिशत की मामूली वृद्धि हुई है, जो कि पशु आबादी में वृद्धि के कारण है, जिसमें क्रॉस-ब्रीड मवेशियों की संख्या में 10 प्रतिशत की उल्लेखनीय वृद्धि भी शामिल है। खेती का क्षेत्रफल बढ़ने से चावल से मीथेन उत्सर्जन 3 प्रतिशत बढ़ गया। 2016 में चावल का क्षेत्रफल 43.1 मिलियन हेक्टेयर था जो 2019 में 43.6 मिलियन हेक्टेयर तक पहुंच गया। हालांकि, इसी समय अवधि के दौरान, चावल की खेती से पानी बचाने और मीथेन उत्सर्जन को कम करने वाले कई जल वातन व्यवस्था की हिस्सेदारी 2016 में 12.4 प्रतिशत से बढ़ कर अब 21.9 प्रतिशत हो गई है, जो 9.5 प्रतिशत अंकों की शुद्ध वृद्धि दर्शाता है।

मिट्टी से नाइट्रस ऑक्साइड उत्सर्जन में 13.6 प्रतिशत की सबसे बड़ी वृद्धि देखी गई, जिसका श्रेय सिंथेटिक उर्वरक-आधारित नाइट्रोजन की खपत में वृद्धि को दिया गया। जबकि खाद प्रबंधन ने क्षेत्र के उत्सर्जन में 1 प्रतिशत की वृद्धि का योगदान दिया, फसल अवशेष जलाना कृषि के भीतर एकमात्र उप-क्षेत्र था जिसने 5.4 प्रतिशत की कमी दर्ज की है जबकि भारत की स्वैच्छिक घोषणा में कृषि में विशिष्ट शमन गतिविधियों और उत्सर्जन में कटौती को शामिल नहीं किया गया है, उन्हें देश की खाद्य और पोषण सुरक्षा के लिए आवश्यक जीवित उत्सर्जन पर विचार करते हुए, रिपोर्ट में कृषि क्षेत्र में अनुकूलन की महत्वपूर्ण भूमिका पर जोर दिया गया है।

रिपोर्ट में कृषि को अधिक टिकाऊ बनाने के लिए भारत द्वारा की गई पहलों पर भी चर्चा की गई है। हालांकि, रिपोर्ट में कृषि उप-क्षेत्रों में उठाए गए अनुकूली उपायों के बारे में बताया गया है, लेकिन कृषि उत्सर्जन में सबसे बड़ा योगदानकर्ता होने के बावजूद, विशेष रूप से पशुधन क्षेत्र से जुड़े किसी भी अनुकूलन उपायों की अनदेखी की गई है। रिपोर्ट में मिट्टी से नाइट्रस ऑक्साइड उत्सर्जन बढ़ रहा है, यह तो बताया गया है, लेकिन कौन सी फसलें और मिट्टी कितना उत्सर्जन कर रही हैं, इसका विवरण गायब है। ■

चूल्हों के नाम पर खेल

विश्व स्वास्थ्य संगठन के मुताबिक यह दूषित साधन बड़े पैमाने पर प्रदूषण पैदा करते हैं, जो हर साल असमय होने वाली 32 लाख मौतों की वजह बन रहे हैं। इतना ही नहीं इनसे पैदा होता धुआं हर साल वैश्विक उत्सर्जन में भी दो फीसदी का योगदान दे रहा है। जो जलवायु में आते बदलावों के लिहाज से बेहद महत्वपूर्ण है।

■ ललित मौर्या

एक शोध से पता चला है कि क्लीन कुकस्टोव के जलवायु पर पड़ते सकारात्मक प्रभावों को परियोजनाएं 10 गुना बढ़ा चढ़ाकर बता रही हैं, ऐसे में अध्ययन का दावा है कि कमजोर तबके को जहरीले धुएं से बचाने की यह लोकप्रिय योजना, उत्सर्जन के त्रुटिपूर्ण आंकलन के चलते कमजोर हो रही है। गौरतलब है कि कमजोर देशों में खाना पकाने के साफ-सुथरे साधनों के लिए जद्दोजहद करते लोगों के लिए क्लीन कुकस्टोव यानी स्वच्छ ईंधन पर चलने वाले चूल्हे किसी वरदान से कम नहीं, जो लोगों की बुनियादी जरूरत को पूरा करने के साथ बढ़ते उत्सर्जन में कटौती करने में भी मददगार साबित हो सकते हैं। आज भी दुनिया भर में करीब 240 करोड़ लोग अपना खाना पकाने के लिए लकड़ी, कोयला, केरोसीन, जैसे जीवाश्म ईंधन से चलने वाले साधनों पर निर्भर हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के मुताबिक यह दूषित साधन बड़े पैमाने पर प्रदूषण पैदा करते हैं, जो हर साल असमय होने वाली 32 लाख मौतों की वजह बन रहे हैं। इतना ही नहीं इनसे पैदा होता धुआं हर साल वैश्विक उत्सर्जन में भी दो फीसदी का योगदान दे रहा है। जो जलवायु में आते बदलावों के लिहाज से बेहद महत्वपूर्ण है। विशेषज्ञों का मानना है कि खाना पकाने के इन दूषित साधनों की जगह इलेक्ट्रिक कुकर

जैसे स्वच्छ विकल्पों का चयन उत्सर्जन में गिरावट के साथ-साथ स्वास्थ्य के लिहाज से भी फायदेमंद साबित हो सकता है। विशेषज्ञों को भरोसा है यह बदलाव सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरण के नजरिए से भी फायदेमंद साबित होगा। इससे न केवल वायु गुणवत्ता में सुधार आएगा, साथ ही लकड़ी और ईंधन जमा करने में लगने वाले समय की बचत होगी, साथ ही वनों को होते नुकसान में भी कमी आएगी। यही वजह है कि इन क्लीन कुकस्टोव परियोजनाओं ने कार्बन बाजार में बड़े पैमाने पर कंपनियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। जो अपने आप को कार्बन-न्यूट्रल दिखाने के लिए इन परियाजनाओं को फाइनेंस कर रही हैं, ताकि उन्होंने जो उत्सर्जन किया है वो उससे छुटकारा पा सकें। लेकिन हाल ही में किए एक नए अध्ययन से पता चला है कि यह क्लीन कुकस्टोव परियोजनाएं जो कार्बन-ऑफसेट पहल का एक लोकप्रिय हिस्सा हैं वो जलवायु पर पड़ते अपने सकारात्मक प्रभावों को 10 गुणा अधिक बता रही हैं। अध्ययन के मुताबिक इन क्लीन कुकस्टोव के बढ़ा चढ़ा के आंके गए यह कार्बन क्रेडिट, उत्सर्जन को कम करने के प्रयासों में बाधा डाल रहे हैं। चूंकि कंपनियां वास्तविकता में उत्सर्जन को कम किए बिना अपने जलवायु लक्ष्यों को हासिल करने और कई बार अपने उत्पादों को कार्बन न्यूट्रल बता कर बेचने के लिए इन ऑफसेट का सहारा लेती हैं।

ऐसे में इसकी वजह से कार्बन बाजार पर जो भरोसा है वो भी दरक रहा है। इतना ही नहीं इसकी वजह से बाजार द्वारा लंबे समय तक इन क्लीन कुकस्टोव परियोजनाओं के लिए वित्त पोषित करने की राह भी मुश्किल हो रही है। गौरतलब है कि कार्बन रजिस्ट्रियां ऐसी पद्धतियां अपनाती हैं जो यह तय करती है कि कौन सी परियोजनाएं ऑफसेट बाजार का हिस्सा हो सकती हैं और उत्सर्जन पर उनके प्रभाव का अनुमान कैसे लगाया जाए। यह प्रोजेक्ट डेवलपर्स, जैसे कि कुशल कुकस्टोव की आपूर्ति करने वाली कंपनियां इन पद्धतियों की मदद से यह ट्रैक करने और अनुमान लगाने के लिए जिम्मेवार होती हैं कि उनकी परियोजना उत्सर्जन में कितनी कमी करती हैं। इसी आधार पर उन्हें मिलने वाले कार्बन क्रेडिट का निर्धारण किया जाता है। बता दें कि यह अपनी तरह का पहला अध्ययन है जिसमें किसी ऑफसेट परियोजना की गुणवत्ता का गहन मूल्यांकन किया गया है। अपने इस अध्ययन में कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय से जुड़े शोधकर्ताओं ने स्वच्छ कुकस्टोव की वजह से उत्सर्जन में आती कमी को मापने के लिए पांच अलग-अलग तरीकों की जांच की है। उन्होंने इन तरीकों की तुलना मौजूदा अध्ययनों से करने के साथ-साथ, स्वतंत्र रूप से अपना विश्लेषण भी किया है। इस अध्ययन के नतीजे 23 जनवरी 2024 को अंतराष्ट्रीय जर्नल नेचर सस्टेनेबिलिटी में प्रकाशित हुए हैं। ■

क्या होता है कार्बन क्रेडिट और कार्बन ऑफसेट?

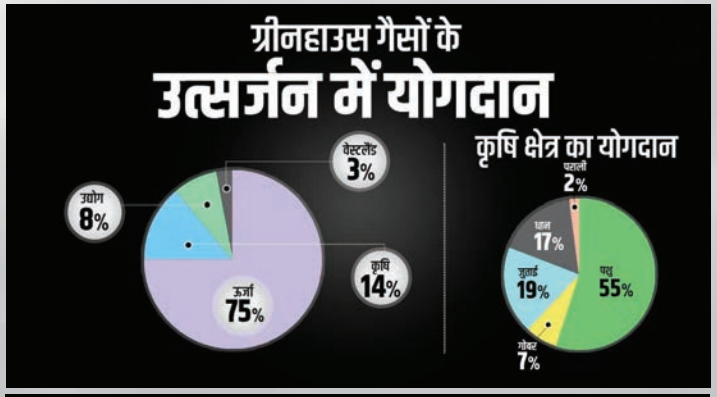

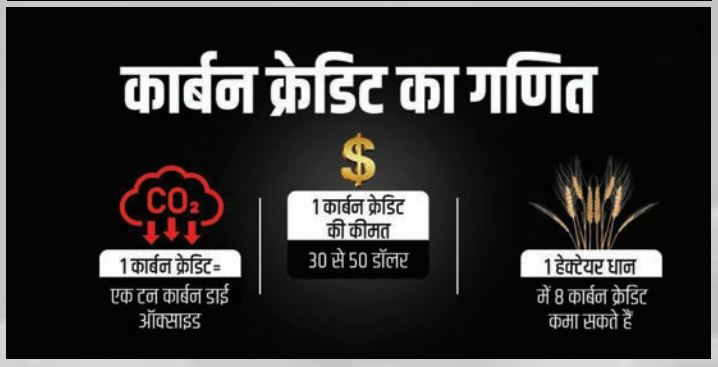

कार्बन बाजार को एमिशन ट्रेडिंग के रूप में भी जाना जाता है। यह ऐसे समझौते हैं जिसमें देश, संस्थाएं या कंपनियां ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन के लिए आपस में अनुमति पत्र का आदान प्रदान करते हैं, जिसे कार्बन क्रेडिट कहा जाता है। यह एक तरह का टोकन होता है। इसे ऐसे समझ सकते हैं, एक देश या कंपनियों के लिए उत्सर्जन का एक तय स्तर होता है। ऐसे में यदि वो कंपनियां अपने तय स्तर से कम उत्सर्जन करती हैं तो वो बचाए उत्सर्जन को कार्बन क्रेडिट के रूप में दूसरे को बेच सकती हैं।

इन कार्बन क्रेडिट को वो कंपनियां खरीद लेती हैं जो तय सीमा से अधिक उत्सर्जन कर रही होती हैं। यह कार्बन क्रेडिट सरकारों द्वारा कंपनियों को जारी किए जाते हैं। इसमें प्रत्येक क्रेडिट एक टन कार्बन डाइऑक्साइड का प्रतिनिधित्व करता है। वहीं कार्बन ऑफसेट कंपनियों द्वारा ही बनाए जाते हैं और कंपनियों द्वारा ही उनका कारोबार किया जाता है। उदाहरण के लिए यदि कोई कंपनी पेड़ लगाने या क्लीन कुकस्टोव बनाने का काम करती है, तो वो पेड़ लगाने या कुकस्टोव की वजह से वातावरण को हुए फायदे को कार्बन ऑफसेट के रूप में उपयोग कर सकती है। उत्सर्जन में इस कमी के बदले इस कंपनी को कार्बन क्रेडिट दिए जाते हैं, जिसका व्यापार यह दूसरी कंपनियों या व्यक्तिगत रूप से किया जा सकता है। इसे ऐसे समझा जा सकता है, यदि कोई कंपनी तय सीमा से ज्यादा उत्सर्जन करती है तो वो उसकी भरपाई के लिए इस तरह की कार्बन ऑफसेट परियोजनाएं चलाने वाली कंपनियों से कार्बन क्रेडिट खरीद लेती हैं, ताकि उस परियोजना से मिले कार्बन क्रेडिट की मदद से उनकी छवि साफ हो सके। देखा जाए तो यह उत्सर्जन कंपनियों को ग्रीनवॉशिंग करने में मदद करता है क्योंकि अपने द्वारा उत्सर्जित कार्बन की एवज में कार्बन क्रेडिट खरीदकर यह कंपनियां जिम्मेवारी से पल्ला झाड़ लेती हैं। ■

बसंत पंचमी प्रकृति परिवर्तन का त्यौहार

■ घनश्याम बादल

भौतिक रूप से कहें तो जब कलियां, पल्लव, पुष्प, कोंपल तथा पत्ते तक खिल उठें, मौसम खुशगवार हो जाए, न गर्मी सताए और न ही सर्दी का प्रकोप रहे तो समझिए कि बसंत आ गया है। जब हृदय में काम भाव हिलोरें मारने लगे तो यह बसंत के आने का संकेत है। बसंत पंचमी का दिन बसंत के आने का संदेश लाता है। मिथकों और ब्राह्मण ग्रंथों के अनुसार बसंत पंचमी के दिन सरस्वती देवी का अविर्भाव हुआ था। ब्रह्मा ने उस देवी को वाणी की देवी सरस्वती कहा। इस दिन विद्या की अधिष्ठात्री देवी मां सरस्वती की पूजा आराधना विशेष रूप से की जाती है। भारतीय परंपरा में बसंत का आरंभ बसंत पंचमी से होता है। इसी दिन 'श्री' अर्थात विद्या की अधिष्ठात्री देवी महासरस्वती का जन्मदिन मनाया जाता है।

सरस्वती ने अपने चातुर्य से देवों को राक्षसराज कुंभकर्ण से कैसे बचाया, इसकी एक मनोरम कथा वाल्मिकी रामायण के उत्तरकांड में आती है। कहते हैं देवी वर प्राप्त करने के लिए कुंभकर्ण ने दस हजार वर्षो तक गोवर्ण में घोर तपस्या की। जब ब्रह्मा वर देने को तैयार हुए तो देवों ने कहा कि यह राक्षस पहले से ही है, वर पाने के बाद तो और भी उन्मत्त हो जाएगा तब ब्रह्मा ने सरस्वती का स्मरण किया। सरस्वती राक्षस की जीभ पर सवार हुई। सरस्वती के प्रभाव से कुंभकर्ण ने ब्रह्मा से कहा-स्वप्न वप्नाव्यनेकानि देव देव ममाप्सिनम। यानी मैं कई वर्षो तक सोता रहूं, यही मेरी इच्छा है। बसंत पंचमी का दिन सरस्वती जी की साधना को ही अर्पित है। इस दिन संपूर्ण प्रकृति में मादक उल्लास और आनंद की सृष्टि हुई थी। ब्राह्मण-ग्रंथों के अनुसार सरस्वती ब्रह्मस्वरूपा, कामधेनु तथा समस्त देवों की प्रतिनिधि विद्या, बुद्धि और ज्ञान की देवी हैं। अनंत गुणशालिनी देवी सरस्वती की पूजा-आराधना के लिए माघ मास की पंचमी तिथि निर्धारित की गई है। ऋग्वेद में सरस्वती देवी के असीम प्रभाव और महिमा का वर्णन है। मां सरस्वती विद्या और ज्ञान की अधिष्ठात्री हैं। कहते हैं, जिन पर सरस्वती की कृपा होती है, वे ज्ञानी

बसंत पंचमी का वैज्ञानिक महत्व

भारत देश ऋतु और पर्व का त्यौहार है। उन्हीं में से एक त्यौहार बसंत पंचमी है। बसंत पंचमी ऋतु परिवर्तन का त्यौहार है परंतु क्या आप जानते हैं कि बसंत पंचमी का वैज्ञानिक महत्व क्या है? यह पर्व क्यों मनाया जाता है? इसका वैज्ञानिक और आध्यात्मिक कारण क्या है ?

बसंत पंचमी ऋतु परिवर्तन का त्यौहार है। इसमें किसी भी प्रकार का संदेह नहीं करना चाहिए परंतु बसंत ऋतु चैत्र और वैशाख यह दो प्रमुख माह माने गए हैं। बसंत का पर्व माघ में ही क्यों मनाया जाता है? इसका कारण यह है कि मकर संक्रांति के पश्चात सूर्य उत्तरायण की तरफ हो जाता है। इस समय से बसंत ऋतु का प्रारंभ मानकर इस उत्सव का प्रचार हुआ है। परंतु शास्त्रों में इसकी शास्त्रीय पद्धति बताई जाती है। पौराणिक मान्यताओं के अनुसार माघ महीने के शुक्र पक्ष की पंचमी को हरि का पूजन करना चाहिए और इस बसंत पंचमी को विद्वान लोगों से विद्या ग्रहण करनी चाहिए। नित्य क्रिया कर्म से निवृत होकर स्नान करने के पश्चात आभूषण और वस्त्रों को धारण करके माता सरस्वती की पूजा अर्चना करनी चाहिए। मां सरस्वती के साथ-साथ भगवान श्री विष्णु जी और कामदेव की भी पूजा की जाती है। भगवान ब्रह्मा जी ने जब सृष्टि की रचना की तो उन्हें प्रकृति का निर्माण करना था जिसके लिए भगवान ब्रह्मा जी ने सरस्वती का प्राकट्य किया। जिसके पश्चात देवी सरस्वती जी ने सुंदर प्रकृति निर्माण किया। इस सृष्टि जगत की सुंदरता बढ़ गई जिसमें प्राणी निवास कर सकें ताकि समस्त प्राणी पशु पक्षी और अन्य जीव इस सुंदर प्रकृति में विचरण कर सके। माता सरस्वती को कंठ अर्थात वाणी की देवी कहा जाता है माना जाता है। प्रत्येक प्राणी की वाणी में देवी सरस्वती का निवास होता है। मां सरस्वती की कृपा से ही प्रत्येक प्राणी यो को आवाज मिली। मां सरस्वती को विद्या और ज्ञान की देवी भी कहा जाता है। छोटे बच्चों को उनकी प्रारंभिक शिक्षा इसी दिन से प्रारंभ करना चाहिए। ऐसा करने से बच्चे अधिक उच्चतम गुणों को प्राप्त होते हैं। आपने देखा होगा कि कोयल अपने मधुर वाणी की प्रारंभ बसंत ऋतु के आगमन के पश्चात ही करती है। बसंत ऋतु में सभी पेड़ पौधे एक में एक नई ऊर्जा का संचार होता है। जिससे सभी पेड़ पौधों में नई पत्तियां फुल का प्रदुर्भाव होता है।

बसंत पंचमी पूजा

शास्त्रों के अनुसार देवी सरस्वती मां को पीला रंग अत्यधिक प्रिय है जिसके कारण इस दिन देवी सरस्वती की पूजा अर्चना में पीले रंग का वस्त्र धारण कर पूजा करना अत्यधिक शुभ माना जाता है। इसका अर्थ है की पिला रंग ऊर्जा और ज्ञान का प्रतिनिधित्व करता है। पीले रंग की दृष्टि पढ़ते ही हमारे शरीर में सकारात्मक शक्ति का संचार होता है जिससे हमारे शरीर में एक अनुकूल प्रभाव पड़ता है। इससे मन को प्रसन्नता का अनुभव होता है। बसंत को ऋतुराज कहा जाता है जिस प्रकार किसी राजा के आगमन होता है तो उसके आने से पहले ही उसके स्वागत की तैयारी करने लगते हैं। ठीक उसी प्रकार ऋतुराज अर्थात बसंत पंचमी की स्वागत के लिए प्रगति की देवी तथा स्नेही पंचम भ्रमण कोयल, पेड़ पौधे इत्यादि सभी 40 दिन पहले से ही सुसज्जित होने लगते हैं। वन उपवन में की सौरभ गुण से संसार का मन सरोवर उभरने लगता है ठंड भी धीरे-धीरे भगवान श्री प्रभाकर का विस्तार देखकर पीछे हटने लगता है। सभी प्राणियों में एक अद्भुत भाव पैदा होने लगता है किसान लोग अपने परिश्रम को देखकर अत्यंत प्रसन्न होते हैं।

वसंत पंचमी का महत्व

बसंत पंचमी के दिन रति और कामदेव की पूजा का भी विधान है। माना जाता है कि उनकी पूजा से रति तथा कामदेव हमारे ऊपर अत्यधिक प्रसन्न हो और हम अनिष्ट कार्यों में प्रवेश न करें क्योंकि इनके प्रचण्ड ताप को बड़े-बड़े ऋषि महर्षि सहन नहीं कर सकते हैं तो मनुष्य कहां लगता है। कामदेव महाराज ऋतुराज के परम मित्र हैं। अतः बसंत पंचमी के दिन उनकी अवश्य पूजा करनी चाहिए। जब तक संसार जानता था तभी तक इसमें विपुल पराक्रमी दिव्य दृष्टि, वीर्य, पुरुष रत्न तथा पति पारायण कामनाएं पैदा होती थी। आज उसी के अभाव से वृद्धो की कौन कहे नवयुवकों को भी बिना चश्मा के दिखाई नहीं पड़ता। थोड़े से ही भय की उपस्थित होने पर व्यक्ति यदि परास्त हो जाते हैं। किसी गुण विषय पर भी कुछ समय तक विचार नहीं कर सकते हैं। थोड़े से ही परिश्रम से मस्तिष्क घूमने लगता है। ■

और विद्या के धनी होते हैं। इसका आरंभ और समापन सरस्वती वंदना से होता है। मां सरस्वती की वंदना की जाती है, जिसके भाव होते हैं-'असतो मा समय, तमसो मा ज्योतिर्गमय' के। आज के दिन पूजा कक्ष को खास तौर पर स्वच्छ करें, सरस्वती देवी की प्रतिमा को पीले फूलों से सजाएं, मंडप को भी पीत पुष्पों से सुसज्जित करें एवं पीले परिधान पहनाएं। इसी प्रतिमा के निकट गणोश का चित्र या प्रतिमा भी स्थापित करें, परिवार के सभी सदस्य पीले वस्त्र धारण कर तथा पूजा में सम्मिलित हों। बेर और सांगरी प्रसाद में मुख्य रूप से खाएं, प्रसाद की थाली में नारियल और तांबूलपत्र भी रखें।

मान्यता है कि ऐसा करने से ज्ञान की देवी सरस्वती कृपा करती हैं। अगर आप मंदिर जा रहे हैं, तो पहले 'ऊं गं गणपतये नमः' मंत्र का जाप करें। उसके बाद माता सरस्वती के मंत्र-'ऐं ह्रीं क्लीं महासरस्वती देव्यै नमः' का जाप करके आशीर्वाद प्राप्त कर सकते हैं। देवी कृपा से ही कवि कालिदास ने यश और ख्याति अर्जित की थी। वाल्मीकि, वशिष्ठ, विमित्र, शौनक, व्यास जैसे महान ऋषि देवी-साधना से ही कृतार्थ हुए थे। विद्वानों का मानना है कि सूर्य के कुंभ राशि में प्रवेश के साथ ही रति-काम महोत्सव आरंभ हो जाता है। यह वही अवधि है, जिसमें पेड़-पौधे तक अपनी पुरानी पत्तियों को त्याग कर नई कोपलों से आच्छादित दिखाई देते हैं। समूचा वातावरण पुष्पों की सुगंध और भौरों की गूंज से भरा होता है। मधुमक्खियों की टोली पराग से शहद लेती दिखाई देती हैं, इसलिए इस माह को मधुमास भी कहा जाता है। प्रकृति काममय हो जाती है। बसंत के इस मौसम पर ग्रहों में सर्वाधिक विद्वान 'शुक्र' का प्रभाव रहता है। शुक्र भी काम और सौंदर्य के कारक हैं, इसलिए रति-काम महोत्सव की यह अवधि कामोद्दीपक होती है। अधिकतर महिलाएं इन्हीं दिनों गर्भधारण करती हैं। जन्मकुंडली का पंचम भाव-विद्या का नैसर्गिक भाव है। इसी भाव की ग्रह-स्थितियों पर व्यक्ति का अध्ययन निर्भर करता है। यह भाव दूषित या पापाक्रांत हो, तो व्यक्ति की शिक्षा अधूरी रह जाती है।

भारतीय सिने जगत ने भी समय-समय पर बसंत को गीतों में गूंथ कर परोसा है, उसे मस्ती का पर्व बनाया है 'रंग बसंती आ गया, मस्ताना मौसम छा गया' जैसे गीत इसका प्रमाण है। लोक गीत और साहित्य भी बसंत को अपने तरीके से वर्णित करते रहे हैं। जायसी जैसे कवि तो पद्मावत में पद्मावती के वियोग में भी बसंत को ले आते हैं। देखिए 'चैत बसंता हओइ धमारि, मोहे लेखे संसार उजारि' कर वे बसंत को सीधे मन से जोड़ देते हैं। अस्तु, बसंत तन, मन, जीवन को रंग-उमंग देने का मौसम है, और इस मौसम के आगाज का नाम है बसंत पंचमी। ■

लकड़ी के ठूंठ को जिंदा कर देते हैं दीपांकर

■ आनंद सिंह

झारखंड के जाने-माने मूर्तिकार दीपांकर कर्मकार ने हाल ही में स्कलचर बनाया है जिसकी काफी चर्चा हो रही है। इस स्कलचर में लकड़ी के उस ठूंठ का इस्तेमाल किया गया, जो आम आदमी के किसे काम का नहीं था। निर्जीव। उसी निर्जीव पेड़ के ठूंठ को दीपांकर ने जीवंत रूप देने की कोशिश की है। आप इन चित्रों को देखेंगे तो खुद ही समझ जाएंगे कि एक ठूंठ से अलग-अलग जीवंत-सा-आकार देने में दीपांकर जी को कितनी मेहनत करनी पड़ी है।

दीपांकर की कलाकृतियों की चर्चा सिर्फ रांची तक ही सीमित नहीं है। उनकी कलाकृतियों की चर्चा देश-विदेश में भी होती रही है। वह लकड़ी के ठूंठ, मिट्टी, पीतल, फाइबर ग्लास समेत कई वस्तुओं से कलाकृति बनाते हैं। दीपांकर ने फाइन आर्ट्स में मास्टरी हासिल की है। उन्होंने पटना आर्ट कॉलेज से बी.एफ.ए और मास्टर्स इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, राजनांदगांव (छत्तीसगढ़) से किया। संप्रति वह रांची में डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, रांची में गेस्ट फैकल्टी के तौर पर अपनी सेवाएं दे रहे हैं। ■

युगांतर प्रकृति

प्रकृति एवं पर्यावरण को समर्पित मासिक पत्रिका

प्रकृति, पर्यावरण, सामाजिक उत्थान, क्षमता संवर्धन शोध एवं विकास तथा राष्ट्रीय गौरव के लिए समर्पित संस्था

विज्ञापन दर

1. बैक पेज	1,00,000/-
2. इनसाइड कवर पेज	90,000/-
3. फुल पेज	75,000/-
4. हाफ पेज	50,000/-

सदस्यता शुल्क

1. वार्षिक	250/-
2. पंचवर्षीय	1,200/-
3. दस वर्षीय	2,400/-
4. आजीवन	5,000/-

भुगतान संबंधित निर्देश

भुगतान कृपया चेक/डीडी/आरटीजीएस द्वारा Nature Foundation के नाम से करे

Account Details
Nature Foundation
Account No. : 3611740792
Kotak Mahindra Bank
IFSC Code : KKBK0005631

विज्ञापन संबंधित निर्देश

कृपया अपना विज्ञापन पीडीएफ अथवा जेपीजी फॉर्मेट में yugantarprakriti@gmail.com ईमेल या डाक द्वारा युगांतर प्रकृति, सेंट्रल स्कूल के समीप, सिद्रोल, नामकुम, रांची - 834010 के पते पर भेजे.

विशेष सहयोग

'युगांतर प्रकृति' का प्रकाशन नेचर फाउंडेशन के द्वारा किया जाता है, जो प्रकृति एवं पर्यावरण को समर्पित एक गैर लाभकारी ट्रस्ट है. पत्रिका के सुगम प्रकाशन हेतु Nature Foundation के नाम चेक अथवा डीडी के माध्यम से यथासंभव आर्थिक सहयोग आमंत्रित है.

Since Year 1978

S.N. Sinha Institute of Business Management

Approved by: All India Council for technical Education (AICTE) Govt. of India
Recognised by Deptt. of Science & Technology, Govt. of Jharkhand
Affiliated to (JUT) Jharkhand

Admission Open

For 2023-25 **MBA**
Specialization
Human Resources
Marketing Management and Finance
Eligiblility:- Graduate With Mat, C-mat, Xat , Cat, AiMA Test Etc.

Separate Hostel Facility Available for Boys & Girls in Campus

Salient Features

- Scholarship Shall be awarded to ST, SC & BC as per Jharkhand Government Norms.
- Special Scholarship shall also be awarded to the Defence wards and Girls.
- There is a Placement Cell to ensure almost 100% Placement

International Linkages

- Faculty, exchange Tie up with Academy of Management Mongolian Technical University.
- Intenational labour Organisation (ILO)
- British Institute of Mangement (UK)
- International Institute of Asian Studies, Leiden, Netherland
- Tarleton State University Dallar, Texas USA

National Linkages

- International Institute of Gandhians Studies & Research, Govt. of India
- Accredited with National Skill Development Council (NSDC) Govt. of India
- Empaneled with Jharkhand Skill Development Mission Society (JSDMS) Deptt of Labour, Govt. of Jharkhand.
- Empaneld with Jharkhand State Sheduled Cast Co Operative Development Corporation Ltd. Depatt. of Welfae, Govt. of Jharkhand

Address: Hawai Nagar, Road No-6, Ranchi-834003 (Jharkhand)
Phone: Nos: 0651-3593385, 95394, 9508161074, 8709736535
Email: info@snsibm.ac.in, snsibm@rediffmail.com Website: www.snsibm.ac.in